
SRI PRATAP COLLEGE

भारतीय ग्रन्थ माला - संख्या ७

विश्व वेदना

" बहुत दिनों तक फूल न सकते,
स्वार्थ, अनय या अत्याचार। "

भगवानदास केला

भारतीय ग्रन्थ माला : संख्या ७

* विश्व वेदना *

Vishwa Vedna.

लेखक

श्रद्धाञ्जलि, भारतीय शासन, और नागरिक शिक्षा, आदि के

रचयिता

भगवानदास केला

Bhagwan Das Kela.

प्रकाशक

व्यवस्थापक, भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन।

मुद्रक

त्रैलोक्यनाथ शर्मा, "जमुना प्रिन्टिग वर्क्स," मथुरा।

प्रथम संस्करण १२५० प्रति | सन् १९३१ ई० | मूल्य चौदह आने

1931



बाबू कन्हैयालाल जी राठी, ऐडवोकेट, मथुरा.

* समर्पण *



श्री० कन्हैयालाल जी राठी,

बी० ए०, एल-एल० बी०, मथुरा।

सुहृद्वर !

आपने मेरे सुख की कामना की है, मेरे दुखों में समवेदना प्रकट की है। मेरी अभिरुचि और विचारों से सहानुभूति दर्शायी है। परमात्मा करे, ऐसी भावना समाज और राज्य के प्रत्येक व्यक्ति की, तथा प्रत्येक व्यक्ति के प्रति हो; और, विश्व की दीन दुखी जनता की वेदना के अन्त होने का मार्ग प्रशस्त हो।

मैं यह क्षुद्र भेंट आपको समर्पण करता हूं। आशा है, मेरी यह रचना अपेक्षा-कृत कुछ सरस होने के कारण, आपको विशेष रुचिकर प्रतीत होगी।

विनीत

भगवानदास केला

निवेदन



संसार में लोगों की कुछ वेदनायें तो प्रत्यक्ष दिखायी देती हैं, परन्तु अनेक वेदनायें ऐसी भी होती हैं, जो सामाजिक, धार्मिक या राजनैतिक परिस्थिति में दबी रहती हैं। जब किसी की वेदना यथेष्ट रूप से व्यक्त की जाती है तो स्वाधीन चिन्तन करने वाले सहृदय व्यक्ति पर उसका कल्याणकारी प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। मैं ने कई बार चाहा कि विविध पीड़ितों के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करूं; क्या ही उत्तम हो यदि विश्व वेदना को वाणी प्रदान होजाय। मेरे हृदय में वेदना भरी हुई थी अपने कष्टों को भूलने की थोड़ी बहुत सामर्थ्य परमात्मा ने दे दी है तो औरों के कष्ट तो जान बूझ कर भी भूलना नहीं चाहता।

× × × ×

अङ्कों और तथ्य बातों में लगा रहने के कारण, एवं भाव-प्रकटीकरण में अपनी असमर्थता का विचार करके, मैं ने अब तक अपने मन के भाव मन में ही रखे। पर, अब मुझे कुछ बेचैनी का अनुभव होने लगा; और अधिक समय उन भावों को रोके रखना ठीक न जँचा। इसलिये मैं पीड़ितों की राम कहानी लिखने के लिये विवश होगया। क्या उदार पाठक मेरे इस साहस (दुस्साहस ?) के लिये मुझे क्षमा करेंगे ? क्या पाठकों में से कुछ इस विषय में सहानुभूति-पूर्ण विचार करेंगे ? तब तो में अपने तईं बहुत कृत-कृत्य समझूंगा।

× × × ×

कितने ही सज्जनों ने इस पुस्तक के कुछ अंश सुन कर मुझे इस विषय में प्रोत्साहित किया है। कई एक महानुभावों ने मुझे इस के सम्बन्ध में यथोचित परामर्श प्रदान करने की कृपा की है। मान्यवर सरदार माधव विनायक किबे, एम. ए. (डिप्टी—प्राइम मिनिस्टर, होल्कर राज्य), ने इस का परिचय, तथा श्रीमान् विनयमोहन जी शर्मा बी ए. ने 'वेदना की बातें' लिख कर मुझे प्रत्यक्ष रूप से, एवं चिर काल के लिये ऋणी बना लिया है। मैं इन सब का हृदय से कृतज्ञ हूं।

× × × ×

सुहृद्वर श्री विनयमोहन जी के वक्तव्य का बहुत कुछ अंश किस प्रकार इस रचना के एक विशेष अभाव की पूर्ति

कर रहा है, इसे पाठक अवलोकन करने पर स्वयं जान लेंगे। हां, उन की उन पंक्तियों को, जिन में उन्हों ने मेरे या भारतीय ग्रन्थ माला के प्रति अपने भाव-पूर्ण विचार प्रकट किये हैं, भविष्य वाणी के रूप में भी स्वीकार करना मेरे लिये कठिन होरहा है। उन के उक्त कथन से साहित्य हितैषियों पर, स्वयं उन पर भी, इस बात का उत्तरदायित्व आता है कि वे अपने बहु-मूल्य सहयोग से इस ग्रन्थ माला को उक्त भावों के योग्य बनाने में सहायक हों।

× × × ×

मुझे अभिमान और सन्तोष है कि इस ग्रन्थ माला को चाहे जितनी, गुप्त या प्रकट असुविधाओं का सामना करना पड़ रहा हो, यह कितने ही सुहृदों की सहानुभूति से कृतार्थ है, उन के प्रेम की भाजन है। इस बात में उज्वल भविश्य का आभास मिलता है। परमात्मा इस के उच्च और सात्विक आदर्श की रक्षा करे। शुभम्।

विनीत
भगवानदास केला



परिचय

बुद्ध भगवान ने चार उदाहरण ऐसे देखे जिन से उन को यह प्रतीत हुआ कि संसार में जो कुछ दीखता है, वह स्थायी न होने से, जीर्ण रूप में, परिवर्तन-शील है। उन्हों ने खेद की बात यह देखी कि यह होने वाला परिवर्तन दुखान्त है । इस वास्ते उन्होंने आनन्द का मार्ग खोज निकाला।

श्रीयुत भगवानदास जी केला ने — जो कई एक उपयुक्त पुस्तकों के कर्ता हैं — व्यवहार में जो अनेक प्रकार की वेदनायें हैं, उन का स्पष्ट वर्णन तेरह प्रकरणों में किया है। किसान, क़ैदी, अनाथ, दलित, मज़दूर, बच्चे, विधवा, इत्यादि को होने वाली वेदनायें उन्हों ने विशद रूप से दिखायी हैं। इस विवेचन में उनका यह हेतु स्पष्ट है कि राष्ट्र-नेता तथा सामाजिक सुधार करने वाले पुरुष, इन वेदनाओं को दूर करने का उपाय सोचें।

पुस्तक बहुत मार्के की है। ग्रन्थकर्ता का निरीक्षण मार्मिक और उच्च कोटि का है। भाषा सुन्दर और सुपरिणामकारक है। किसी भी भाषा के साहित्य में ऐसे विचार प्रदर्शित करने वाली पुस्तकें कम होती हैं। हिन्दी जनता एवं समस्त संसार इस रचना का यथेष्ट आदर करेगा, ऐसी मैं आशा करता हूं।

इन्दौर
ता० १९-४-३१

मा० वि० किबे
एम. ए.

वेदना की बात

श्रीयुत् भगवानदास जी केला ने भारतीय ग्रन्थ माला द्वारा हिन्दी साहित्य की जो अमूल्य सेवा की है, उसकी हिन्दी भाषा भाषी भले ही उपेक्षा करें, पर हिन्दी साहित्य उसे कभी विस्मृत नहीं कर सकता। यों तो हिन्दी साहित्य में लेखकों की बाढ़ आई हुई है, पर ऐसे लेखक कितने हैं, जिनके हृदय में अपनी राष्ट्र-भाषा और राष्ट्रोत्थान की बेचैन लगन है! मान्य केलाजी हिन्दी के उन अंगुलियों पर गिने जाने वाले मनस्वी लेखको में से हैं जो अपने जीवन की प्रत्येक श्वास को राष्ट्र और राष्ट्र-भाषा के चिन्तन में ही उच्छ्वसित करते हैं। वे एक साहित्यिक तपस्वी हैं। वे जो कुछ बोलते हैं, जो कुछ लिखते हैं, उसमें उनके प्राणों की सा-हित्यिक जलन बरबस बाहर निकल पड़ती है। हिन्दी जगत उन्हें एक शुष्क राजनीति के लेखक के ही रूप में जानता पहचानता आया है। ऊपर से शुष्क दीखने वाली भूमि की तह में भावना की भी स्रोतस्विनी बहती है, इसका परिचय बहुत कम लोगों को था। परन्तु, जब वे पिछली बार अपने

हृदय के भीगे फूलों की 'श्रद्धाञ्जलि' लेकर आये तब हमने उनके अन्तर की तरल बाजू भी देखी।

× × × ×

श्रीयुत केलाजी इस बार 'विश्व वेदना' का चित्र लेकर हिन्दी जगत् में उपस्थित हो रहे हैं। इस शब्द-चित्र को तैयार करने में उन्होंने अपने हृदय के सारे करुणा-रंगों से अपनी लेखनी-तूलिका की प्यास बुझायी है। ऐसा प्रतीत होता है, कि उन्हें इस चित्र को चित्रित करते समय कई बार अपनी आंखों के तरल वेग को संभालना पड़ा है। जिस स्थल पर वे अपने इस तीव्र भावावेग को नियंत्रित करने में असफल हुए हैं, वहां चित्र पट पर एक ही भाव का अधिक गहरायी से उत्कर्ष हो गया है। पर, इससे सम्पूर्ण चित्र के आत्म-प्रदर्शन में कोई कमी नहीं होने पायी। अश्रु, और उच्छवासों को शब्द-चित्र का रूप देना आसान नहीं है। इस प्रयत्न में लेखक को कितनी बार वेदना की लहरों में बहना पड़ा होगा, इसका कुछ अनुमान उनके 'निवेदन' की निम्न पंक्तियों से लगाया जा सकता है:—" मेरे हृदय में वेदना भरी हुई थी। अपने कष्टों को भूलने की थोड़ी बहुत सामर्थ्य परमात्मा ने दे दी है, पर औरों का कष्ट तो जान बूझ कर भी भूलना नहीं चाहता।" सम्भव है, कलाविद् उनके विश्व-वेदना-चित्र की रेखाओं में यथेष्ट लम्बाई गहरायी के दर्शन न भी कर सकें, पर यह तो सम्भव नहीं कि उन्हें

उसमें लेखक के हृदय की सरलता, व्याकुलता, और भाव प्रवणता बरबस न दीख पड़े। मैं ने यह सब कुछ इसमें देखा है, और, कई स्थलों पर मैं भी लेखक के हृदय के साथ तन्मय होकर उदास हुआ हूं, दुखी हुआ हूं।

× × × ×

विश्व में आज चारों ओर भिन्न भिन्न नामों से वेदना का ताण्डव जारी है। बाहर से जो देश वैभव-सम्पन्न दीख रहे हैं, उन की दशा मुझे यूनान के डायोमिसियस के उस डेमोक्लीस के समान दीखती है, जिस के सामने एक ओर तो इन्द्रियों का सारा सुख संगीत, शराब, भोजन आदि उपस्थित हैं, और, दूसरी ओर गर्दन को चूमती हुई तलवार लटक रही है; अब गिरी, तब गिरी, की दशा में।

× × × ×

समष्टि रूप से देखने पर विश्व वेदना का कुछ भाग तो सर्वदेशीय है और कुछ सर्वथा एक देशीय; जैसे दलितों की वेदना भारतवर्ष की ही समस्या कही जा सकती है परन्तु यह बात नहीं है कि विश्व के अन्य देशों से "दलित" शब्द का लोप होगया हो। आज भी अमरीका के 'रेड इंडियन' और 'नीग्रो' दलित की श्रेणी में आ सकते हैं। अफ्रीका में हब्शी ऐसे ही समझे जाते हैं। अत-एव जहां व्यष्टि का प्रश्न है, वहां मानवी भावना में कोई विशेष अन्तर नहीं मालूम होता।

× × × ×

'निर्वासित किसी देश का हो, अपनी मातृ-भूमि से

बिछुड़ने पर अपने बाल बच्चों की स्मृति में यही उच्छवास निकालेगा "वे (बाल बच्चे) क्या कहते होंगे, क्या करते होंगे। पहले मैं जब कभी सभा सोसाइटी में जाता तो उन की मां उन्हें जैसे तैसे बहला कर रखा करती थी ....।" नैराश्य की पराकाष्ठा पर पहुंच कर निर्वासित यही कह सकता है, "भाग्य में बदा होगा तो कभी उस के (मातृ-भूमि के) दर्शन हो जांयगे। न होंगे, तो मेरे हृदय में तो उस का चित्र सुशोभित ही है। (विश्व वेदना पृष्ट १०६)।

× × × ×

अपने अपराध के लिये सच्चे हृदय से पश्चाताप करने के लिये प्रस्तुत होने पर भी, जब क़ैदी 'क़ानून की दफ़ाओं की इज़्ज़त रखने के लिये' (?) सीख़चों के अन्दर बन्द कर दिया जाता है, तब, वह चाहे जिस देश का हो, क़ानून-शिला से कुचला हुआ उसका हृदय यह कहे बिना नहीं मान सकता, "क़ानून में ज़िन्दा आदमियों को मारने की शक्ति क्यों है, जब कि वह मरे हुए को जीवन प्रदान करने में असमर्थ है ?" (वि० वे० पृष्ट ९७-८)। अपने चारों ओर दंभ एवं जूठी सभ्यता का नग्न नृत्य होते देखकर क्या उसकी आत्मा से यह हूक न उठेगी, "इनाम, डाली, भेंट, ऊपर की आमदनी इन शब्दों का अर्थ क्या है ? क्या ये सब चोरी के पर्यायवाची नहीं है ? हां, यह अन्तर ज़रूर है कि गंवारू ढंग से की जाने पर जो क्रिया 'चोरी' कही जाती है,

सभ्यता-पूर्वक की जाने पर वह सुन्दर शब्दों से सम्मानित होती है। (वि० वे० पृष्ठ ८८)।

× × × ×

बेकारी की ज्वाला अशिक्षितों में तो फैली हुई है ही, शिक्षितों में भी वह भयानकता से धधक रही है। प्रति वर्ष कई युवक इसमें अपने अरमानों की, प्राणों के साथ, आहुति करते सुने जाते हैं। दिन रात झुलसने वालों की संख्या की कल्पना तो हृदय को सिहरा देती है। ब्रिटेन भी बेकारी की लपटों से अछूता नहीं बच सका। सरकारी 'स्टेटमेंट' से पता चलता है कि ३० नवम्बर १९३० को वहां बेकारों की संख्या २३,०५,६३९ थी। उसी स्टेटमेंट में जर्मनी में उस तारीख़ को बेकारों की संख्या ३७,६२,००० बतलायी गयी थी। दिसम्बर १९३० के प्रथम सप्ताह में अमरीका की कांग्रेस में १५,००,००,००० डालर बेकारों की सहायता में व्यय करने का प्रस्ताव लाया गया था। इससे स्पष्ट है कि बेकारी की 'लौ' अमरीका तक में फैलती जारही है। इंगलैंड में इस प्रश्न को सुलझाने के लिये, जब से मज़दूर सरकार शासनारूढ़ हुई है, पांच रायल कमीशन नियुक्त होचुके हैं, और ४७ कमैटियां बैठ चुकी हैं। और, यहां ? मत पूछिये। किसी ने कहा है:—

"खुदा ही हाफ़िज़ है इस चमन का।
ख़राब नीयत है, बाग़वां की" ॥

× × × ×

लेखक ने बच्चे की भी वेदना प्रकट करने का प्रयत्न किया है। बच्चा! वह 'मनुष्य का पिता' कहलाता है। पर, क्या वह इस भाव से कभी देखा भी जाता है? एक पत्र में विश्व के मुख्य मुख्य नगरों में, फ़ी हज़ार मरने वालों में बाल-मृत्यु की निम्न लिखित संख्या प्रकाशित हुई थी:- बम्बई ४५०, कलकत्ता ३१७, इलाहाबाद २६५, बर्लिन ९२, पेरिस ८९, मास्को ११७, काहिरा २४७, बोस्टन ८१, शिकागो ७७, लन्दन ६६, न्यूयार्क ६४। इन में से भारतीय नगरों के अंक, यहां के बच्चों की वेदना की कहानी कह रहे हैं।

अन्य देशों में बाल मृत्यु कम करने के लिये विशेष उद्योग जारी हैं। उदाहरणवत्, न्यूज़ीलैंड में बीस वर्ष हुए स्त्रियों और बच्चों के स्वास्थ की रक्षा करने वाली संस्था स्थापित की गयी थी। इस में अनेक शिक्षित महिलायें सम्मिलित की गयीं। इस की ओर से अत्यन्त सरल, सुबोध देश भाषा में शिशु-रक्षा सम्बन्धी पुस्तकें और विज्ञप्तियां प्रकाशित, और विना मूल्य वितरित की गयीं। दाइयां गर्भवती स्त्रियों के पास जा जा कर उन्हें शिशु-रक्षा का उपदेश करतीं, और उन की मुफ्त सहायता करतीं। जिन सुदूर प्रदेशों में दाइयां न पहुंच सकतीं, वहां की स्त्रियों को पत्र-व्यवहार द्वारा यथेष्ट परामर्श दिया जाता। संस्था के इस उद्योग से छः वर्ष के भीतर ही न्यूज़ीलैंड में बाल-मृत्यु

संख्या आधी से भी कम होगयी। संस्था के केन्द्र स्थान-डूनेडिन-में बच्चों का प्रति सप्ताह वज़न लिया गाता है। और, उनकी परीक्षा की जाती है। यदि किसी बच्चे का स्वास्थ गिरा हुआ पाया जाता है तो उसके माता पिता को उचित सलाह दी जाती है। जब तक बच्चा स्वस्थ नहीं हो जाता, उसकी मां को परिश्रम और चिन्ता से मुक्त कर, आराम से, संस्था में रखा जाता है।

न्यूजर्सी (अमरीका) में भी बच्चों की रक्षा का विशेष प्रबन्ध किया जाता है। वहां मां और बच्चे को दिये जाने वाले दूध की, म्युनिसिपैलिटी की ओर से, बड़ी कड़ी परीक्षा होती हैं। वहां नवजात बच्चों के माता पिता के नाम निम्न लिखित सूचना भेजा जाती है। :- " यहां प्रत्येक गुरुवार को, संस्था में बच्चों की परीक्षा होती है। यदि तुम्हारा बच्चा बीमार है, दूध नहीं पीता, तो उसे शीघ्र संस्था में ले आओ। यहां उचित डाक्टरी सलाह निश्शुल्क दी जायगी। गुरुवार के अतिरिक्त, और भी किसी दिन तुम्हारे बच्चे की तबियत खराब हो, तो शीघ्र 'हैल्थ आफीसर' (स्वास्थाधिकारी) को 'फोन' द्वारा सूचित कर देना। तुम्हारे घर पर दायी अविलम्ब पहुंच जायगी। इससे स्पष्ट है कि पाश्चात्य देशों में बच्चों के स्वास्थ की कितनी चिन्ता की जाती है।

हमारे देश में, जैसा कि श्रीमती सेन्ट निहाल सिंह ने कहा है, बच्चों की असामयिक मृत्यु के कारण हमारी दरिद्रता, अशिक्षितता, और बच्चों के लिये उचित डाक्टरी परामर्श और सहायता न मिलना, है। यहां ग़रीबी इतनी बढ़ी हुई है कि योग्य डाक्टरों की सहायता से लाभ नहीं उठाया जा सकता। यदि सरकार ही बच्चों की रक्षा का बीड़ा उठाये तो उन की मृत्यु संख्या कम हो सकती है।

आर्थिक दृष्टि से यह अन्दाज़ लगाया गया है कि अमरीका में एक नवजात बच्चे का मूल्य ९० डालर (२७० रुपये) होता है। इस से यह सिद्ध होता है कि यदि वहां प्रति वर्ष एक लाख बच्चों की मृत्यु हो तो राष्ट्र को दो करोड़ सत्तर लाख रु० की हानि होजाती है। अभी किसी ने भारतीय बच्चे को सोने चांदी से तोलने का प्रयत्न नहीं किया। करे कौन ! देश-हित-चिन्तकों को इस ओर ध्यान देना चाहिये।

× × × ×

वेश्या ! समाज का वह तिरस्कृत एवं उपेक्षित अंग ! उसकी भी वेदना छूने को लेखक की व्यथा मचली है। एक अमरीकन पत्र में, वेश्या-प्रेम पर कुछ इस भाव की कविता प्रकाशित हुई थी :-

प्रेमी अपनी वेश्या प्रेयसी से कहता है, “प्रिये ! आज इस चांदनी की मादकता में, तुमने प्यार की मदिरा

घोली है। आह! कितनी मीठी है, वह! आज तुम आकाश के सारे तारों को, चांद को, विश्व की सारी निधियों को बटोर कर मेरे चरणों पर चढ़ाने के लिये व्याकुल दीखती हो; पर, आह! कल सूरज की किरणों के उदय होते ही जब मेरे "मनी-बेग" (Money-Bag) का दिवाला निकल जायगा, तब? उस समय मैं देखूंगा, तुम्हारी यही अभिलाषाएँ, प्रेम की इतनी ही मतवाली मुस्कराहट किसी और के चरणों पर बरस रही होगी।" वेश्या ने अपने प्रेमी के इन उद्‌गारों को सुन कर एक दीर्घ श्वास ली।"

उस के इस दीर्घोच्छ्वास में कवि ने उसकी बेबसी का, उस की इच्छा की प्रतिकूलता का भाव दिखलाया है।

'चांद' के वेश्याङ्क में उस के विशेष प्रतिनिधि ने काशी की एक प्रतिष्ठित वेश्या के विचार प्रकाशित कराये थे, जो इस आशय के थे:—"परिवार और समाज के निष्ठुर आघात से उत्पीड़ित स्त्रियां ही यह जघन्य व्यापार करने के लिये वाध्य होती हैं। केवल पाशविक उन्माद के प्रवाह में वह कर इतनी स्त्रियां इस पतित व्यवसाय के लिये नहीं ललचतीं। यदि समाज उन्हें अपनाने को तैयार हो जाय तो वे प्रसन्नता से घर गृहस्थी संभालने के लिये राज़ी हो जांय-गीं; पर, समाज के धुरंधर सुधारक तो हमारी दशा की ओर सहानुभूति-पूर्ण दृष्टि से देखना भी घोर पातक समझते हैं।" इस पुस्तक के रचयिता के हृदय से भी, 'वेश्या

की वेदना' में, यही प्रतिध्वनि सुन पड़ती है। मैं यह नहीं कहता कि विश्व से वेश्याओं का सर्वथा अभाव होजाना सम्भव है; परन्तु इस में भी सन्देह नहीं कि उन की स्थिति में सुधार होने पर वे समाज का 'गलित अङ्ग' नहीं बनी रह सकतीं। वे घृणित पद से ऊंची उठाई जा सकती हैं।

× × × ×

अन्य देशों में, मज़दूरों और किसानों की वेदना भारतवर्ष की अपेक्षा अधिक कंपाने वाली नहीं है, तो उन की दशा पूंजीपतियों से अच्छी भी कहीं नहीं है, वे सर्वत्र न्यूनाधिक हीनावस्था में ही हैं। अतएव जब वे अपने सामने गगन-चुम्बी अट्टालिकाओं में अपने जैसे ही जीवित पुतलों को 'बिना परिश्रम कमायी हुई, या वसीहत से प्राप्त, या भाग्य से स्वयं बरस पड़ने वाली जायदाद' पर वैभव की घड़ियां बिताते देखते हैं और, अपने आप को रक्त का पसीना बहा चुकने के पश्चात् भी तंग गलियों में, टूटी झोंपड़ियों में, दो दानों के लिये तरसते हुए देखते हैं, तो उन के हृदयों में अपने परिश्रम का मूल्य न पाने के कारण कसक का उठना स्वाभाविक है।

× × × ×

इनके अतिरिक्त लेखक महोदय ने विधवा, अनाथ, और लेखक की वेदना को भी शब्दों का रूप दिया है। इनकी वेदना का जहां तक सामुहिक सामाजिक प्रश्न से सम्बन्ध

है, वहां तक वह न तो सर्वदेशीय ही कही जा सकती है, और न एक-देशीय ही। विधवा हमारे देश में भी केवल हिन्दू समाज के ही अधिक हिस्से का जटिल प्रश्न है। पर जहां उसकी 'वेदना से सम्बन्ध है' वह सर्वदेशीय हो सकती है। विधवा किसी भी देश या समाज की हो अपने 'भाल का सिन्दूर' लुटने पर व्यथित हुए बिना नहीं रह सकती। बाल विधवा की वेदना से किस का हृदय नहीं फट जाता। वह बार बार अपनी मां से पूछती है, "मां ये क्यों रोते हैं! विधवा का अर्थ क्या है! मेरा भाग्य कैसे फूट गया?" (वि० वे० पृष्ठ ४३)। बच्ची विधवा के यह प्रश्न अपनी मां से नहीं हैं, हिन्दू समाज की कठोरता से हैं। क्या उस के पास उन का कोई उत्तर है?

× × × ×

'लेखक की वेदना' में तो स्वयं पुस्तक-लेखक की जीवन-व्यथा ही सिसक उठी है।

× × × ×

वास्तव में 'विश्व वेदना' निरी कल्पना के चित्रों का आभास नहीं है। वह तो हमारी आंखों के सामने चलने फिरने वाले जीवित पुतलों की तसवीर है, जो लेखक के हृदय में प्रतिविम्बित होकर उन की लेखनी की राह से काग़ज़ पर उतर आयी है। यही कारण है कि उसमें कई जगह सच्चा चित्र प्रदर्शन (Realistic touch) दिखायी देता है।

× × × ×

इस रचना को पढ़ कर मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि लेखक महोदय 'उत्तम पुरुष' में अच्छी कहानियां लिख सकते हैं— हिन्दी में अभी इस प्रकार की कहानियों का एक प्रकार से अभाव ही है—यदि वे कहानियों के अन्त को, आदर्श शिक्षा के विचार से, प्रत्यक्ष उपदेशों से न भर दें। पात्रों का चरित्र चित्रण ही ऐसा होना चाहिये कि पाठक उससे, अप्रत्यक्ष रीति से, नीति शिक्षा (Moral) ग्रहण करता जाय।

× × × ×

यह प्रश्न हो सकता है कि लेखक महोदय ने केवल ग्यारह प्राणियों की ही वेदना का चित्र क्यों खींचा। क्या उन्हें किसी रोगी की चीख़ कराह ने विकल नहीं किया ? क्या वे किसी प्रेमी की विरह व्यथा से आर्द्र नहीं हुए ? इसका उत्तर यही हो सकता है कि लेखक ने व्यक्ति विशेष की वेदना की अपेक्षा सामुहिक वेदना को, ऐसी वेदना को जो किसी राष्ट्र या समाज का प्रश्न है, अधिक महत्व दिया है। इसमें सन्देह नहीं कि रोगी, प्रेमी, या किसी पशु पक्षी—जैसे रस्सी खूटे से बंधे बछड़े, और पींजरे में बन्द 'राम राम' कहने वाले तोते—आदि की वेदनाओं का भी करुण चित्र खींचा जा सकता है; पर इनका क्षेत्र संकुचित है, किसी राष्ट्र या समाज का आतुर प्रश्न नहीं।

× × × ×

अस्तु, 'बातों' को अधिक न बढ़ा कर, मैं 'विश्व वेदना'

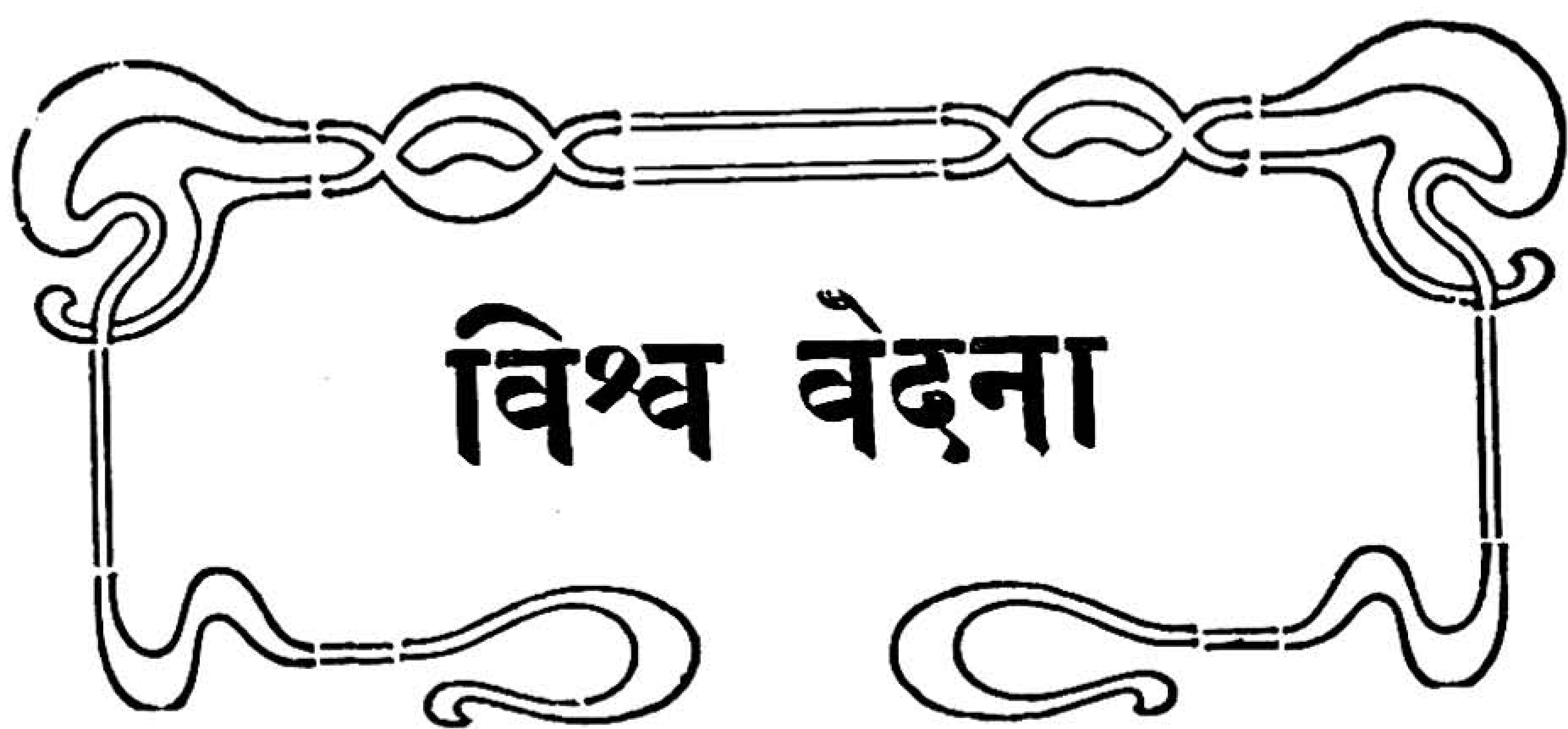
के व्यथित लेखक महोदय का भावना क्षेत्र में सादर स्वागत करता हूं। मुझे विश्वास है कि जिस तरह विश्व वेदना के चित्र ने मेरे हृदय पर असर किया है, उसी तरह वह दूसरों पर भी असर किये बिना न रहेगा। वेदना व्यक्त होते समय किसी भाषा का आडम्बर नहीं चाहती। वह तो सीधी निकल कर सीधी ही प्रविष्ट होना जानती है। 'विश्व वेदना' में यही गुण है, यही आकर्षण है। आशा है हिन्दी जगत लेखक की इस मौलिक कृति का यथेष्ट आदर करेगा।

× × × ×

होल्कर कालिज,
इन्दौर

विनय मोहन शर्मा
बी. ए.

विषय सूची


विश्व वेदना

"दीनों का दर्द अनुभव करने वाले हृदय ही विश्व की सर्व श्रेष्ठ सम्पत्ति हैं।"

———

सुनते सुनते ऊब गया हूं,

जग की कथा पुरानी।

आओ, अब नव सृष्टि करो,

हे मेरी राधा रानी॥

— श्री सूर्यनाथ तकरु

(१)

पूर्वाभास

"करुणा-रस-पूर्ण साहित्य के अवलोकन से चित्त की जो शुद्धि होती है, वह आंसुओं के मोल सस्ती है।"

(क)

सुखी आदमियों के पास उठने बैठने वाले, उनसे मेल जोल करने वाले, उनकी बातें सुनने वाले, और उनके गीत गाने वाले बहुत होते हैं। क्या तुम दुखियों की ओर ध्यान दोगे? परन्तु उनका तो सहज ही पता नहीं लगता। दूसरे आदमी उनके विषय में विशेष चर्चा नहीं कर करते! वे स्वयं भी अपने आप को प्रायः छिपाये ही रखना चाहते हैं। उनमें से अनेक रोते चिल्लाते नहीं, शिकायत फ़रयाद करते नहीं। फिर वे प्रकाश में कैसे आवें! हां, उनकी आकृति से, उनके भावों से, उनके दुखी होने का आभास मिल सकता है,

पर इसके लिये सोचने विचारने की आवश्यकता होती है। अस्तु, दुखियों की वेदना व्यक्त हो, या अव्यक्त रहे, संसार के अधिकांश आदमी कष्ट-पीड़ित ही मालूम होते हैं; मनुष्य समाज वेदना भरा दिखाई पड़ता है।

× × × ×

(ख)

अनेक छोटे छोटे बालक रोटियों के टुकड़ों के लिये गलियों और बाज़ारों में मारे मारे फिरते हैं। इनके माता पिता मर गये, यह तो अचम्भे की बात नहीं। आश्चर्य तो यह है कि इतने जीवित आदमी औरतों में कोई उनके प्रति पिता माता का कर्तव्य पालन करने को तैयार नहीं। यदि इनके जन्म-दाता माता पिता जीवित होते तो ये बालक अपने छोटे छोटे कष्टों को भी उन्हें बड़े मचल मचल कर सुनाते; पर अब तो भारी से भारी दुख के लिये भी ये किससे फ़रयाद करें ? और, इनका मौन रुदन सुनता ही कौन है !

× × × ×

बच्चे कष्ट की दशा में रोया करते हैं। परन्तु बहुधा इनके माता पिता को भी इनका रोना सुनने का अभ्यास होजाता है। ये किस लिये रोते हैं, यह स्पष्ट तो होता नहीं; और मां बाप भी हर समय यह प्रयत्न नहीं करते कि

इनके रोने का कारण मालूम करें। अनेक बन्धु तो यह भी सोचते हैं कि ऐसा करने से उन्हें, उनके कष्ट दूर करने की चिन्ता के रूप में, एक नयी आफ़त मोल लेनी होगी; इस लिये उस ओर ध्यान न देना, या यह बहाना कर लेना ही अच्छा है कि हम इनके रोने का अर्थ नहीं समझे।

× × × ×

किसी आदमी का देहान्त हो जाने में उसकी स्त्री का क्या अपराध है? यदि उसकी स्त्री अपराधी है, तो क्या उस आदमी के भाई बन्धु आदि भी अपराधी नही हैं? तब तो क्या एक स्त्री के देहान्त में उसका पति भी अपराधी माना जाना चाहिये? पर यह तो होता नहीं। फिर विधवाओं को ही समाज में अपराधियों का सा जीवन क्यों बिताना पड़ता है? जो रीतियां या प्रथायें स्त्रियों को विधवा बनाने में सहायक होती हैं, क्या उन्हें दूर करना समाज का कर्तव्य नहीं है? किसी स्त्री के विधवा हो जाने पर दूसरों को उसे अमंगल-रूप क्यों समझा जाता है? विधवाओं को साधारण मानवी अधिकारों से वंचित क्यों किया जाना चाहिये?

× × × ×

कई बार कुछ स्त्रियां सर्दी की मौसम में भी रात के आठ आठ नौ नौ बजे तक अपनी लकड़ियां बेचने की प्रतीक्षा करती देखने में आती हैं। कोई कोई

तो फिरते फिरते थक कर बैठ जाती है। उसके साथ में छोटा बच्चा होता है, उसे सर्दी से बचाने के लिये वह अपनी लकड़ियों के कुछ तिनके तोड़ कर जलाती रहती है। आह! इसकी लकड़ियां किस समय बिकेंगी, और कब यह घर जाकर अपनी रोटी पानी का प्रबन्ध करेगी; और, हां, ये लकड़ियां अवश्य ही बिक जांयगी, इसका भी क्या भरोसा है! ओफ़! वह बेचारी इस समय भी व्याकुल है, बच्चा भूखा रो रहा है। फिर उस दशा में उसकी वेदना का क्या ठिकाना, जब उसे ये लकड़ियां ही घर लेजानी पड़ेंगी, और अन्न के लिये दो पैसे न मिलेंगे!

× × × ×

मिलों आदि में काम करके निश्चित आजीविका पाने वाले मज़दूरों की भी दशा अच्छी नहीं। वह काम पर जाते हुए कभी कभी तेल फुलेल लगाते हैं, और बीड़ी पीते हुए बहुत अकड़ कर चलते हैं। परन्तु यह सब तो इस बात का प्रमाण है कि वे व्यसनों के अधीन हैं, और, इन व्यसनों से ही वे अपनी वेदना को भुलाने का प्रयत्न करते हैं। अथवा, यह कहा जा सकता है कि उनका यह ढोंग इस बात के लिये है कि कोई उनकी आन्तरिक वेदना को न जान सके, कोई उनकी गृहस्थी तथा बाल बच्चों की बुरी दशा को न समझ सके।

× × × ×

आह ! वह दृश्य तो बड़ा ही करुणोत्पादक है, जब कि कोई कारिन्दा किसी किसान को पकड़ कर मारते पीटते ज़मींदार के यहां ले जाता है। किसान का बदन नंगा है। धोती की जगह अंगोछा सा लपेटे हुए है, वह भी मैला होने के सिवाय पुराना और फटा हुआ है। सिर पर, साफ़े या टोपी के अभाव में, एक लम्बी सी पट्टी (पगड़ी) लपेटे हुए है। उसी के एक सिरे में से वह कुछ रुपये निकाल कर 'मालिक' (ज़मींदार) के सामने रखता है, और हाथ जोड़े उसके पांव पड़ता है, गिड़गिड़ाता है कि किसी प्रकार वह लगान के हिसाब में इस क्षुद्र भेंट को स्वीकार करले। वह अनुभव करता है कि ज़मींदार अपने मित्रों और सरकारी अहलकारों का चाहे जितना स्वागत सत्कार करता हो, उनके सामने चाहे जितना नम्र और विनयी बनता हो, पर लगान वसूल करते समय तो वह नितान्त हृदय-हीन हो जाता है। अन्यथा, वह किसान उसे रो रोकर बता देता कि ये जो थोड़े से रुपये लाकर वह उस के चरणों में रख रहा है, ये उसके परिवार के कई महीने आधा पेट खाने और आधे नंगे रहने के अतिरिक्त, साहूकार की भारी धौंस सह चुकने के फल-स्वरूप संग्रह किये हुए हैं। इस समय वह रोता नहीं तो क्या, उसका हृदय अपनी अज्ञानता पर, और, दुनियां की निष्ठुरता पर रो रहा है। क्या कोई उसके इस मौन रुदन को सुनेगा ?

× × × ×

जिन लोगों की स्वतंत्र चिन्तन करने की शक्ति कुछ शेष है, उन्हें यह दृश्य देख कर दुख हुए बिना नहीं रहता कि एक आदमी या औरत को सड़क पर से गुज़रने के लिये 'हटियो', 'बचियो' की आवाज़ लगाते रहना आवश्यक है। वह शान्ति-पूर्वक घूम फिर भी नहीं सकता। हर घड़ी उसे यही डर रहता है कि कहीं अन्य आदमियों को (अनजान में) छू देने के अपराध में उसे दंडित न होना पड़े। दूसरे आदमी उसे ऐसे वर्ण या जाति का मानते हैं कि उन्हें उसकी अपेक्षा अपने कुत्ते बिल्ली आदि का स्पर्श कहीं अधिक रुचिकर होता है। ऐसे दृश्यों को प्रति दिन देखते रहने से बहुत से आदमियों को इसमें कुछ विचित्रता मालूम नहीं होती। क्या तुम्हारी दृष्टि में भी यह अन्याय नहीं है ?

× × × ×

हाथ में हथकड़ियां पड़े हुए क़ैदी को पुलिस के पहरे में अदालत या जेल में जाते देख कर हम उसे अपराधी मान लेने में ही अपने कर्तव्य की इति श्री समझ लेते हैं। हम में से कितने हैं जो यह सोचने का कष्ट उठाते हैं कि उस बेचारे ने उन कामों को क्यों, कैसी परिस्थिति में, किया, जिनके कारण वह आज दुनियां की आंखों में अपराधी बना है। और, इस बात को तो बड़े बड़े न्यायाधीश भी नहीं सोचते कि जो दंड अपराधियों को दिया जाता है, उससे उसका तथा समाज का क्या भला होगा। किसी का कुछ भला हो

या न हो, उन्हें तो क़ानून की मांग पूरी करने से मतलब है। ऐसा करने से उनका 'कर्तव्य' पूरा हो जाता है, और वे प्रति मास अपनी भरपूर वेतनादि के हक़दार हो जाते हैं।

× × × ×

निर्वासितों के वारे में बहुत से भाई यही सोच कर रह जाते हैं कि यदि वे भले आदमी होते तो इन्हें अपने ही देश में न रहने दिया जाता। वे यहां से निकाल दिये गये हैं, यह इस वात का काफ़ी प्रमाण है कि वे समाज और और राज्य को क्षति पहुंचाने वाले हैं, वे अपने विचारों के रूप में, देश में, ऐसा भयानक रोग फैलाने वाले हैं कि यहां उनका संसर्ग भी अभीष्ठ नहीं है; इसी लिए उन्हें ऐसे दूर स्थानों में भेजा गया है, जहां की हवा भी यहां तक न आसके।

× × × ×

वेश्यायें समाज में प्रायः घृणा का पात्र बनी हुई हैं। पर किसी विचारशील व्यक्ति को उन्हें देखकर या उनकी याद आने पर समाज से घृणा हुए विना नहीं रह सकती। अभागी समाज! तू ने ही तो इनकी सृष्टि की; और, अब तू इनसे घृणा करके अपने अधःपतन को कैसी चतुराई से छिपाना चाहती है। अपने हाव, भाव और श्रृंगार आदि से वेश्यायें समाज ही के तो पापों का परिचय देती हैं।

× × × ×

क्या लेखक के विषय में भी दो शब्द कहे जांय? वह देश-हित का विचार करके अपनी मानसिक शक्ति द्वारा यथा-सम्भव सेवा करता है। परन्तु समाज उसके भरण पोषण की भी चिन्ता नहीं करता, और राज्य अवसर आने पर उसे अपने दमनकारी अस्त्रों का शिकार बनाने को तत्पर रहता है। लेखक बेवकूफ़ है कि उसने अवैतनिक कार्य करना चाहा है, तो किसी को उसे वेतन-स्वरूप प्रतिफल देने, या उसके प्रति उदारता दर्शाने, की क्या पड़ी है?

× × × ×

काम से जी चुराने वाले और मुफ्त की रोटी खाने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति समाज का घुन होते हैं। परन्तु बहुत से आदमियों को खोज करने पर भी अपनी आजीविका के लिये शारीरिक या मानसिक कार्य न मिल सकना भी तो समाज और राज्य की व्यवस्था के लिए कलंक है। भगवन्! हम सभ्यता की यह कैसी मंज़िल पार कर रहे हैं, जबकि यदि एक ओर दस बीस आदमी लखपति और करोड़पति बनते हैं तो सहस्रों को उनकी भूख और प्यास की ही चिन्ता सताने लगती है। शिक्षितों की बेकारी को दूर करने के लिये शिक्षा पद्धति में, और साधारण मज़दूरों की बेकारी दूर करने के वास्ते धनोत्पादन तथा धन-वितरण विधि में यथेष्ठ सुधार क्यों नहीं किया जाता?

× × × ×

(ग)

क्या इस प्रकार के पीड़ित व्यक्ति किसी देश विशेष में ही हैं ? नहीं, ये मौन रुदन करने वाले संसार भर में फैले हुए हैं। हां, कहीं कुछ कम हैं, कहीं कुछ ज्यादह हैं। परन्तु कोई शिक्षित, सभ्य, और उन्नत राज्य भी इनकी मूक वेदना से बचा हुआ नहीं है। निदान, संसार में पीड़ित लोगों की श्रेणियों में थोड़ा बहुत अन्तर भले ही हो, परन्तु जिस प्रकार मनुष्यों के रंग रूप या भाषा भेष आदि के भेद से उन सब की मनुष्य संज्ञा होने में फ़रक नहीं आता, उसी प्रकार पीड़ितों की श्रेणियों की पृथक्ता से उनकी वेदना में अन्तर नहीं होता। वेदना सर्वत्र है, विश्वव्यापी है, उसके प्रकट करने की शैली भले ही भिन्न भिन्न प्रकार की हो, अथवा वह अस्पष्ट ही क्यों न हो।

× × × ×

संसार में अधिकांश आदमियों को अपनी अपनी पड़ी है। दूसरों के दुख को अपना दुख मानने वाले, दूसरों के कष्टों से स्वयं दुखी होने का अनुभव करने वाले, दूसरों की चिन्तायें हटाने में तल्लीन होने वाले भाग्यशाली देवता पुरुष इस मर्त्य लोक में अपेक्षाकृत कम हैं। क्या तुम अपनी गणना इनमें करा सकोगे ? क्या तुम दीन दुखी लोगों की ओर ध्यान दोगे ?

× × × ×

अगले पृष्ठों में पीड़ित अपनी अपनी वेदना सुना रहे हैं। यदि तुम अपने कान बन्द कर लोगे तो निश्चय जानो तुम या तुम्हारे वंशज भी एक दिन इसी तरह चिल्लायें, चीखेंगे, सहायता के लिये याचना करेंगे, पर कोई एक न सुनेगा। अतः सबको अपने अपने स्वार्थ के लिये, अपने वंशजों के कल्याण के लिए उनकी पुकार की ओर समुचित ध्यान देना चाहिये। शुभम्।

(२)

अनाथ की वेदना

ऐसी पीड़ा अन्तस्तल में, हो मुझको भगवान।
जिससे सारी दौलत उन पर, और चढादूं जान॥
समझूं सदा उन्हें मैं अपने, जीवन का संसार।
वे ही मेरे, मैं ही उनका, इसका हो आधार॥

—'हिमांशु'

(प्रथम)

पिता जी की मुझे बिल्कुल याद नहीं। जब उन का स्वर्गवास हुआ तो मैं डेढ़ दो वर्ष का तो था ही। मैं ने जब होश संभाला तो मां को ही देखा। वह ही मेरे लिये सब कुछ थी। पितृ-हीन होने से कोई कष्ट

होता है इसका मुझे अनुभव नहीं हुआ, यह मेरी माता की ही दया और कृपा थी। जहां तक उससे बन पड़ा, मेहनत मज़दूरी करते हुए भी, मुझे खिलाने पिलाने में उस ने कुछ कोर कसर न रखी। पर, निष्ठुर दैव से, मेरे ऊपर उसकी छत्र छाया बना रहना, बहुत समय सहन न हुआ।

× × × ×

स्नेह-मयी माता का विछोह होजाने पर मैं कहीं का न रहा मां की याद मुझे बुरी तरह सताने लगी। हां, पापी पेट ने उसे क्रमशः घटाया। मेहनत मज़दूरी की आदत नहीं थी। सिवाय भिक्षा-वृत्ति के, मेरे लिये कुछ और चारा न था। मैं जहां तहां दो मुट्ठी दानों के वास्ते फिरने लगा। पहले पहले मांगने में बड़ी शर्म आयी; मुंह से शब्द ही नहीं निकलता था। पर धीरे धीरे अभ्यास हो गया। मैंने मांगना सीख लिया। मैं भिखारी होगया। कहीं कोई जानने वाले मिल जाते, तो परस्पर में कहने लगते, "अरे! यह उस विधवा का लड़का है, बेचारी ने बड़े लाड़ चाव से पाला था अब तो बेचारा अनाथ है, भीख मांग खाता है।" ऐसी बातें को सुन कर मेरे मन में बड़ा दुख होता था। इस लिए मैं ने अपने गांव से दूरदूर ही रहना ठीक समझा। परन्तु, जहां मैं जाता, थोड़े बहुत दिन में वहां भी कोई न कोई परिचित व्यक्ति दिखायी देने लगता। मैं उससे

आंखें बचाकर निकल जाता। इस प्रकार एक स्थान से दूसरे स्थान चलता रहा, और अपने गांव से बहुत दूर निकल गया।

× × × ×

मैं एक बड़े विशाल नगर में पहुंचा। यहां आने के अगले ही दिन मुझ पर जो बीती, उसकी याद करके सिर चकराता है। आह! एक पुलिस वाले ने मुझे भिक्षा में आधी रोटी लेते देख लिया। वह लाल आंखें करके मेरी तरफ़ झपटा, कहने लगा, 'बदमाश, लुच्चे, पाजी! चल हवालात में।' उसने मुझे गिरफ्तार कर लिया और मुझे घसीटने लगा। मैं ने कहा, 'भाई, मैं ने किसी का कुछ बिगाड़ा नहीं, चोरी आदि कुछ नहीं की, तू मुझे क्यों घसीटता है?' उसने बिगड़ कर कहा, 'बदमाश! चोरी नहीं की तो क्या, भीख तो मांगी है। यह रोटी अपने कब्ज़े में करे लेता हूं, जिससे सबूत रहे; और, ये मोहल्ले के इतने आदमी खड़े हैं, सब गवाह होंगे। ऐसा भोला बनता है, जैसे मालूम ही नहीं कि भीख मांगना जुर्म है।' वह मुझे घसीटे लिये जा रहा था कि एक बूढ़े को दया आगयी। उसने पुलिस वाले की मिन्नत आरज़ू की, कुछ गुपचुप बात की, और पीछे यह कहकर मेरा पिंड छुड़ाया कि यह फिर ऐसा न करेगा। मैं भोचक्का इधर उधर देखने लगा।

× × × ×

मैं पुलिस वाले के फंदे से छूट गया, तो क्या ! मेरी भूख की समस्या तो हल नहीं हुई थी। इतने दिन भीख मांग कर निर्वाह किया था, अब यह मार्ग भी बन्द होता है। क्या करूं ? ज़रा निश्चय तो कर लूं कि क्या वास्तव में भीख मांगना जुर्म है। आख़िर, मैं ने उसी बूढ़े से पूछा तो उसने पुलिस वाले का समर्थन करते हुए कहा, 'बेटा थोड़े दिन से इस नगर में ऐसा ही क़ानून जारी हुआ है। मैं ने पूछा, 'बाबा यह क़ानून तो भूखा मारने का बना, क्या कोई क़ानून भूख मिटाने का भी बना है ?' बूढ़ा मुसकराया, 'कैसी बात कहता है ! क़ानून को इससे क्या वास्ता !'

× × × ×

उपर्युक्त बातें हो रही थीं। उसी समय एक सज्जन उधर से निकल आया। उसने कहा, 'अरे ! इधर आओ ! हम तुम्हें पेट भरने का नुसख़ा बताते हैं। हमारे अनाथालय में भरती हो जाओ। वहां दीन हीन आदमियों के खाने पीने का प्रबन्ध होता है, और उन्हें सद्धर्म की दीक्षा दी जाती है। हम तुम्हें सच्चा धर्म सिखायेंगे। तुम उस पर विश्वास करना। मैं सोच रहा था कि इनके अनाथालय में जाने के लिए मुझे अपना धर्म छोड़ना होगा। इतने में एक दूसरे महाशय आगये। उन्होंने कहा, 'अरे तुम्हारी जाति के आदमी कैसे निर्दयी हैं, जो अपने बालक को यों भटकने देते

हैं। तुम हमारी जाति में आजाओ, खाने पहिनने आदि की सब चिन्ताओं से मुक्त होजाओगे। इस वर्ष हमने दो सौ लड़के लड़कियों को अपनी जाति में मिलाया है, वे सब हमारे अनाथालयों में मज़े से रहते हैं। तुम भी वहां अच्छी तरह रहोगे।'

× × × ×

मैं इन दोनों सज्जनों से कहने लगा, 'साहब, आप बड़े दयालु हैं। पर मैं अपने बाप दादा का धर्म कैसे छोड़ूं! मैं अपनी ही जाति में रहना चाहता हूं।' इस पर उन्होंने मुस्करा कर कहा, 'भय्या! धर्म और जाति वही अच्छी है जिस में भूखा नंगा न रहना पड़े, जिसमें खाने पीने और मौज करने का सामान मिले।' मैं रोने लगा। हाय! आज पापी पेट के ख़ातिर अपने बाप दादाओं का धर्म और जाति छोड़नी पड़ रही है। पर हां, यह दो इनके ख़रीदार खड़े हैं, किसके हाथ बेचना ठीक होगा। मैं ने इन दोनों अनाथालयों के इन्तज़ाम वग़ैरह की बातें पूछ लीं। उन में जाने को मेरा मन न हुआ।

× × × ×

मैं अपने ही धर्म और अपनी ही जाति वालों के अनाथालय में भरती हुआ। मुझे वहां खाने पहिनने की चिन्ता न रही। मेरी रोटी कपड़े की ठीक व्यवस्था हो गयी। परन्तु

कुछ समय बाद मुझे यह विचार होने लगा कि मेरी गिनती अनाथों में होती है। मैं एक 'रजिस्टर्ड' अनाथ हूं। दूसरों के दान पुण्य से मेरा निर्वाह होता है। दर्शक मुझे दीन हीन समझते हैं। मुझ से ऐसे भजन और गीत गवाये जाते हैं, जिनसे दूसरों को हमारी दशा पर खूब तरस आये। इन बातों से मेरे हृदय में स्वाभिमान का विकास कैसे हो! मुझे क्रमशः अपने जीवन से ग्लानि होने लगी। आह! अपना पेट पालने के लिये मुझे यह निन्दित दिनचर्या चलानी पड़ती है!

(द्वितीय)

ओफ़! इस 'अनाथ' शब्द के अर्थ का जितना और जैसा अनुभव मैं ने किया है, वैसा परमात्मा किसी को न कराये। और, संसार में न मालूम कितने अनाथ होंगे। इस एक संस्था में ही इनकी संख्या सौ से अधिक हैं। सुना है, हमारे देश में ऐसी संस्थायें लगभग तीन सौ हैं। फिर बहुतेरे अनाथ ऐसे भी तो होंगे जो संस्थाओं में प्रवेश नहीं कर पाये हैं, बेचारे इधर उधर भटकते फिरते होंगे; और लोभी स्वार्थी आदमियों के चंगुल में फंसे होंगे। और हां, यह तो एक देश की बात हुई; अन्य देशों में भी तो बहुतेरे अनाथ होंगे।

× × × ×

कोई समझे या न समझे, कुछ व्यक्तियों के अनाथ बना रहने का कुफल देश भर को भुगतना पड़ता है। यदि अनाथ भिक्षा मांगते हैं तो समाज के उपार्जित धन में कमी होती है, और, क्योंकि वे देश के लिए उपयोगी कार्य नहीं करते, समाज की दानशीलता का दुरुपयोग होता है। जब अनाथ छल प्रपंच से अपना पेट भरते हैं, तो वह भी देश के लिए अनिष्टकर ही तो है। पुनः यदि अनाथ अस्वास्थकर स्थानों में रहने, और घटिया ख़राब भोजन पाने, अथवा वस्त्रहीन होने आदि के कारण बीमार पड़ते हैं तो इस से भी रोगों के कीटाणुओं की वृद्धि होती है, और सर्व साधारण का स्वास्थ बिगड़ता है। जिस प्रकार एक कमज़ोर कड़ी से सारी ज़ंजीर कमज़ोर मानी जाती है, ऐसे ही किसी समाज में चाहे जितना धन सम्पदा क्यों न हो, जब तक उसके कुछ व्यक्ति अनाथ होंगे, वह वास्तव में उन्नत नहीं कहा जा सकता; उसे यथेष्ठ सुख शान्ति नहीं मिल सकती।

× × × ×

अनाथालयों में कहीं कहीं अनाथों के वास्ते खान पान और शिक्षा आदि की व्यवस्था कुछ ठीक होते हुए भी, अधिकांश अपने प्रति दूसरों का व्यवहार ऐसा नहीं पाते जिससे वे अपने 'अनाथ' होने की बात भूल सकें। इन्हें समय समय पर यह याद करने का अवसर मिलता रहता

है कि ये माता पिता के सुख से वंचित हैं। संस्थाओं का काम यंत्रों की भांति चलता है, जिनकी प्रणाली शुष्क, नीरस, और प्रेम-हीन होती है। वहां मैनेजर, निरीक्षक, भंडारी आदि सब होते हैं, पर माता पिता तो कहीं ढूंढने से भी नहीं मिलते।

× × × ×

बहुधा जिस अनाथालय में बीस के लिये गुंजायश होती है, उसमें तीस भरे रहते हैं। फिर, जो रुपया या सामान दान या चन्दे में मिलता है, यदि प्रबन्धकर्त्ता उसका ईमानदारी से उपयोग करें, तो भी वह मुश्किल से दस पन्द्रह के निर्वाह के योग्य होता है। ऐसी दशा में अनाथों की विविध शारीरिक और मानसिक शक्तियों का विकास कैसे हो! अनाथालयों से निकलने वाले युवकों और महिलाओं का ऊंचे से ऊंचा लक्ष्य क्या हो सकता है? बस, यही कि वे संसार में खाने पहिनने सम्बन्धी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते रह सकें। क्या वे परोपकार और समाज-सेवा आदि का कोई अच्छा आदर्श नहीं रख सकते? पर इस के लिए अनुकूल व्यवस्था हो, तब न?

(तृतीय)

हरे! इस पृथ्वी पर कोई अनाथ क्यों? ख़ैर, एकान्त घने जंगलों में, ऊंचे पहाड़ों पर, गहरी गुफ़ाओं में कोई अनाथ

मिल सके तो भी एक बात है। परन्तु बस्तियों में, गांवों क़स्बों और नगरों में, जहां सहस्रों स्त्री पुरुष रहते हैं, वहां किसी व्यक्ति का अनाथ होना कैसे सम्भव होता है ? क्या परमात्मा ने इतने मनुष्यों को पिता माता का हृदय नहीं दिया है ? अथवा, पिता माता का अर्थ केवल अपनी ख़ास सन्तान से ही प्रेम करने वालों का समझा जाता है ? अपना हो, या पराया प्रत्येक बालक बालिका बड़ी मनोहर होती है; बच्चे साक्षात ईश्वर के रूप प्रतीत होते हैं। हम उनका तिरस्कार करें, तो यह हमारे दुर्भाग्य के सिवाय और क्या है ?

× × × ×

प्रायः लोगों की धारणा कैसी संकुचित रहती है ! सन्तान-हीन धनवान मनुष्य कभी कभी दूसरे के बालक को (गोद) लेकर उस का पालन पोषण और विवाह शादी आदि करते हैं। परन्तु ऐसा करने में उन की दृष्टि अपनी जाति बिरादरी के दायरे से बाहर नहीं जाती। वे समझते हैं कि अपनी जाति वाले से हमारा वंश चलेगा, हमारा नाम रहेगा। ओफ़ ! कैसा क्षुद्र स्वार्थमय और हानिकर विचार है। एक लड़के को बात की बात में ऐसे धन का मालिक बना दिया जाता है जिसके लिये उसने कुछ भी परिश्रम नहीं किया। क्या वह इस धन का सदुपयोग करेगा ?

क्या वह ऐसे मुफ्त के धन को पाकर व्यसनों से बचेगा? क्या संसार सागर की प्रबल लहरों में उस की जीवन नौका निर्धारित लक्ष्य की ओर चलती रहेगी? फिर वह दूसरों की कीर्ति बढ़ाने वाला कैसे होगा? क्या ही उत्तम हो यदि वे धनी मानी सज्जन दूसरों के बच्चों के लिए निस्वार्थ होकर सहानुभुति रखा करें! वे केवल लड़कों पर ही कृपा-दृष्टि न रख कर लड़कियों की भी सुधि लिया करें। ऐसा काम वे परोपकोर या दान पुण्य के भाव से नहीं, कर्तव्य-पालन की दृष्टि से किया करें।

× × × ×

प्रत्येक बालक बालिका समाज और राज्य का अंग है यह अंग भविष्य में उस के लिये उतना ही उपयोगी होगा, जितना उसे प्रारम्भिक अवस्था में योग्य बनाया जायगा। किसी बच्चे के माता पिता के मर जाने से इस बात में कुछ अन्तर नहीं आता। समाज और राज्य को चाहिये कि मातृ-पितृ-हीन बालक बालिकाओं के सुख स्वास्थ और शिक्षा आदि की यथेष्ठ व्यवस्था करे। प्रत्येक देश में इस कार्य के लिये काफ़ी संस्थायें हों, और उन्हें किसी प्रकार की आर्थिक कठिनाई का सामना न करना पड़े। साथ ही अनाथों में भी स्वावलम्बन के भावों की वृद्धि होती रहनी चाहिये। वे जिस उम्र में जितना कार्य सुगमता-पूर्वक कर

सकें, वह उतना अपनी संस्था के लिये करें, उसके प्रतिफल-स्वरूप यथेष्ठ पारिश्रमिक उनके हिसाब में जमा होता रहे। प्रत्येक व्यक्ति पर होने वाले ख़र्च का भी साफ़ हिसाब रहना चाहिये। ज्यों ज्यों अनाथों में विचार-शक्ति जागृत हो, उन्हें यह हिसाब बता दिया जाना चाहिये। उन्हें समझा दिया जाना चाहिये कि संस्था से उनका देन लेन का व्यापारिक सम्बन्ध है। वह उन्हें जो रुपया पेशगी देती है, वह अनाथों की सुविधानुसार चुकाया जाना चाहिये। इस प्रकार स्वाभिमान का विकास करने वाली अन्य बातों का भी ध्यान रखा जाय। यहां तक कि अनाथों की संस्थाओं के नाम भी अनाथालय न रख कर, 'संजीवनी आश्रम' या 'उद्योग मन्दिर' आदि रखे जाने चाहियें।

× × × ×

इन संस्थाओं का प्रबन्ध करने वाले ऐसे सुयोग्य सदाचारी पुरुष और महिलायें हों जिनके पिता माता का हृदय हो, जो सब बालक बालिकाओं को अपने व्यवहार से ऐसा प्रसन्न और उन्नतशील रखें जैसी सुयोग्य माता पिता की सन्तान रहनी चाहिये। समाज और राज्य के इस कर्तव्य के पालन करने से उनका बड़ा हित होगा, उन्हें इन संस्थाओं से सुयोग्य कार्यकर्ता सहज ही, यथेष्ठ संख्या में, मिल सकेंगे। शुभम्!

(३)

बच्चे की वेदना

"बच्चा मनुष्य का पिता है।" (अर्थात् बच्चे से ही मनुष्य बनता है)।

—अंगरेज़ी कहावत

(प्रथम)

मैं निर्धन माता पिता की सन्तान हूं। मेरा जन्म घास फूंस की टूटी और पुरानी झोंपड़ी में हुआ था। जब मैं दुनियां में आया, तो अपने निवास स्थान (प्रसूतिका-गृह) का मैलापन देख कर मुझे निश्चय होगया कि मैं मर्त्य लोक में आया हूं। यहां किसी के मरने में अचम्भा ही क्या ? आश्चर्य तो यह है कि यहां कोई ज़िन्दा कैसे

रहता है। टूटी चारपाई, फटे पुराने वस्त्र, घर का छटा हुआ बुरे से बुरा सामान, ताज़ी हवा आने के मार्ग यथा-सम्भव बन्द किये हुए, इस पर भी भीतर धूनी आदि का धुआं, ये सब मेरे कोमल शरीर को कष्ट देने के लिये काफ़ी से ज़्यादह थे। मेरा प्रथम संस्कार करने वाली दायी भी बड़ी गन्दी थी, उसके कपड़े मैले कुचैले और शक्ल घिना-वनी थी।

× × × ×

माता पिता की बात चीत से मुझे अनुमान हुआ कि उनमें मेरा स्वागत सत्कार करने की क्षमता न थी। उनकी वार्तालाप का आशय यह था कि जब हमें ही दो वक्त भर-पेट रोटी नहीं मिलती तो इस अभागे बालक का निर्वाह कैसे होगा। मैं इस बात को भूल भी जाता, पर पीछे इस की याद दिलाने वाली घटनायें होती रहीं। अपनी क्षुधा निवारण करने के लिये मैं मां का स्तन मुंह में लेते हुए उससे भोजन की याचना करता, तो वह बड़े दुख से यह कहती हुई मालूम होती, "बेटा! मैं स्वयं भूखी रहती हूं, फिर तुझे देने को दूध कहां से आवे! हां, यदि मेरे रक्त से तेरी आवश्यकता पूरी हो सकती हो तो वह थोड़ा बहुत मेरे स्तन में होगा, उस के देने में मुझे कोई आपत्ति नहीं।"

× × × ×

मां मुझे अपने साथ, एकही कपड़े में, सुलाती थी। इससे मुझे हाथ पांव फैलाने की स्वतंत्रता न रहती। उसका मुंह ढक जाने पर, मेरे लिये भी खुली हवा का अभाव हो जाता। मेरा दम घुटने लगता। बहुधा मेरा कोई अंग माता के किसी अंग के नीचे आ जाता और मुझे बड़ा कष्ट होता। मैं रो रो कर फ़रयाद करता। जब ज़्यादह रोता तो मुझे चुप करने के लिये मां लेटे लेटे ही अपना स्तन मेरे मुंह में दे देती। वह यह नहीं सोचती कि यह मेरे लिये अच्छा नहीं होता।

× × × ×

संयोग से कई दिन लगातार मेरे रोने से माता पिता आदि के सोने में बाधा पहुंची। उन्होंने इस आपत्ति से पिंड छुड़ाने के लिये मुझे अफ़ीम देनी शुरू कर दी। जब कभी मां को दिन में अपना काम करना होता तो मेरे लिए अफ़ीम का नुसख़ा उसने सर्वोत्तम समझ रखा था।

× × × ×

मेरे पिता ने मुझे बहुत कम खिलाया बहलाया है। उन का अधिकतर समय बाहर काम पर ही बीता। मां का मन मुझे खिलाने का होता था, और वह मुझे समय समय पर खिलाती भी थी, परन्तु बीच बीच में उसे घर गृहस्थी के विविध काम धन्धे करने होते थे। इन कामों के समय वह

मुझे मेरे बड़े भाई या बहन के पास छोड़ देती। बहिन तो भी मुझे कुछ ठीक रखती। पर भाई के लिये तो मुझे खिलाना एक बेगार होती थी। वह अपने खेल कूद में लग जाता था। मेरी उपेक्षा होती थी। इससे मुझे कई बार बड़ी बेढब चोट लगी। उधर भाई की लापरवाही से मुझे मिट्टी और कोयला खाने की आदत पड़ गई। जब वे लोग मुझे इन चीज़ों को खाते देखते तो मुझ पर बहुत बिगड़ते। वे यह न सोचते कि इसका मूल कारण तो उनकी ही असावधानी है। मेरी बुरी आदत का उत्तरदायित्व उन पर ही है।

× × × ×

मुझे खिलाने में ही नहीं, अन्य बातों में भी, मेरा बड़ा भाई बहुत ला-परवाह था। मुझे उसकी अपेक्षा अपनी बहिन का स्वभाव बहुत पसन्द था। वह बड़ी दयालु, प्रेमी, और विनयी थी। परन्तु, न मालूम, क्यों उस बेचारी को प्रायः माता के कुवाच्य सुनने पड़ा करते थे। यही क्यों, कोई ही दिन एसा जाता होगा कि वह पिटती न हो। बहुधा उसका कुछ अपराध न होता था, और जब कभी होता भी था तो उसे बताया नहीं जाता था। पिता जी का भी व्यवहार उसके प्रति निष्ठुरता का नहीं, तो उदासीनता का अवश्य था। मेरी समझ में यह बात नहीं आती कि जब मेरे बड़े भाई की इतनी गुस्ताख़ी सही जाय, तो उस बेचारी

को दिन रात इतने कष्ट का जीवन क्यों बिताना पड़े; उसे खाने पहनने को भी भाई से बुरा क्यों मिले । मैं सोचता हूं, कि और तो कोई बात है नहीं, यह भेद अवश्य है कि भाई लड़का है और बहिन लड़की है । अस्तु, मैं अपने भाग्य को सराहता हूं कि मैं लड़की नहीं हूं, अन्यथा और भी अधिक कष्ट पाया करता ।

× × × ×

मेरी बेचारी बहिन दिन रात दुख उठाने से, और खाने पीने को उचित वस्तु न पाने से बीमार पड़ गयी। किसी ने उसकी दवा दारू न की । मौहल्ले के आदमियों ने जब उसे वैद्य हकीम आदि को दिखाये जाने के लिए कहा तो मेरी मां ने केवल यह किया कि उसके हाथ से छुआ कर पांच पैसे उठाकर रख दिये; पीछे एक ख़ास दिन उनके बताशे मोल लेकर वह उनमें से कुछ तो कहीं रख आयी और शेष यहां वहां बालकों में बांट दिये । बहिन को कुछ आराम न हुआ । आख़िर, वह बेचारी ग्यारहवें वर्ष में ही हम सब को छोड़ कर चल बसी । वह मुझे बहुत प्यार से रखती थी । मुझे उसकी स्मृति बराबर बनी हुई है, पर मेरे मां बाप को उसका कुछ रंज हुआ हो, ऐसा मालूम नहीं होता ।

× × × ×

मैं कुछ बड़ा हुआ, तो मुझे रोते से चुप करने के लिए मा एक और उपाय काम में लाने लगी। वह कहती, 'चुप हो, नहीं तो हव्वा कान काट ले जायगा।' कभी कभी वह यह भी कहने लगी, 'आ रे सिपाही ! इसे पकड़ लेजा।' इन बातों से मां ने शुरू शुरू में कुछ आराम पाया। पीछे मुझे ऐसी बातें सुनने का अभ्यास हो गया; मा का नुसख़ा कारगर न रहा।

× × × ×

माता पिता ने खिलाने पहिनाने में बड़ी कंजूसी करके मेरे हाथों पावों के लिये कड़े बनवाये। उनसे मेरा शरीर काला पड़ गया। जब कई कई दिन बाद मेरा मैल छुटाने की चेष्टा की जाती तो मुझे बहुत तकलीफ़ होती, साथ ही, अब दुष्टों के भय से, मेरा गली मौहल्ले में जाना आना भी बन्द हो गया। इन कड़ों ने सचमुच मुझे नज़रबन्द सा कर दिया।

× × × ×

कपड़ों के सम्बन्ध में भी मेरे साथ बड़ी सख्ती की गयी। हल्की क़ीमत के दो तीन जोड़ी सादे कपड़े न बनवा कर, मेरे लिये बढ़िया कपड़े का कुर्त्ता और टोपी बनवायी गयी। उनपर गोटा और बेल लगवायी गयी। ख़राब होने के भय से, मेरे कपड़े बहुत कम धोये गये। मुझे कई कई दिन

में तो नहलाया जाता था, फिर भी वही मैला कुर्ता टोपी पहनना पड़ता था। निस्सन्देह, यदि मेरे माता पिता को अपनी निर्धनता छुपाने की लत न होती तो वे मेरे खाने पहनने की कहीं अच्छी व्यवस्था कर सकते थे।

× × × ×

मेरे मुंडन संस्कार का समय आया। माता पिता ने कई बार इसका विचार भी किया। पर हरबार यह कहकर रह गये कि 'मुंडन कराना क्या कोई खेल है, इतने की मिठाई मंगानी पड़ेगी, इतना वहां चढ़ाने को भी चाहिये, फिर और देने लेने की बात अलग रही। जब तक इस ख़र्च का इन्तज़ाम न हो, मुंडन कराना अपनी नाक कटाना है।' भला ऐसी बातों का मतलब मेरी समझ में क्या आता। मुंडन न होने से मुझे बड़ी तकलीफ़ थी, माता पिता भी इसे समझते थे, फिर भी अपने विचित्र विचारों में पड़े रहने के कारण वे बहुत दिन तक इसे टालते रहे।

(द्वितीय)

एक दिन मुझे अपनी मां के साथ एक ऐसे परिवार में जाने का अवसर मिला जो बड़े विशाल और भव्य चौमंज़ले मकान में रहता था। वहां तरह तरह का साजो-समान था, कई नौकर चाकर थे। संयोग से मुझे वहां अपनी ही उम्र का बालक भी मिल गया। उसके पास मेरा बहुत मन लगा।

उससे मेरी खूब बात चीत हुई। मैंने कहा, 'भाई! तुम्हारे माता पिता तो खूब पैसे वाले मालूम होते हैं, तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट न होगा? तुम ज़रा अपना वृतान्त तो सुनाओ।' इस पर उसने यह कहना प्रारम्भ किया :—

"तुम्हारी इच्छा है तो सुनो! मेरे माता पिता मुझे स्वयं बहुत कम रखते हैं। उन्होंने मेरे लिये कई नौकर चाकर रख छोड़े हैं। सबेरे कोई रखता है, दोपहर में कोई, और शाम के समय कोई। सब का स्वभाव निराला है। मुझे सबेरे से शाम तक कई कई तरह का अनुभव करना पड़ता है। इन नौकरों में दया और प्रेम की खेदजनक कमी है। वे मुझे नहलाने धुलाने का काम बेगार समझ कर करते हैं। एक साथ खूब साबुन लथेड़ देते हैं, हालांकि मुझे उसकी ज़रूरत बहुत ही कम होती है। नहला कर मुझे अच्छी तरह पोंछते नहीं। जल्दी जल्दी कपड़े पहनाने लगते हैं, जो आवश्यकता से अधिक होते हैं। ज़्यादह कपड़े पहने रहने से मेरी सहन-शक्ति बढ़ने नहीं पाती। ज़रा ठंडी या गरम हवा लगने से मेरी तबियत ख़राब हो जाती है। हर दम मुझे गोदी में, या बग्गी में, या झूले में रखा जाता है, मुझे चलने फिरने की स्वतन्त्रता नहीं दी जाती।

× × × ×

"मेरे माता पिता के रिश्तेदार और मित्र प्रायः आते रहते

हैं। सबकी इच्छा मुझे गोदी में लेने की रहती है। उन भले आदमियों को मेरे शरीर की कोमलता का तो विचार ही नहीं रहता, जिस प्रकार उनका जी बहले, वैसा काम करते हैं, मुझे उछालते हैं, झटका देते हैं, मनमाने नाच नचाते हैं। पर मुझे स्वतंत्रता-पूर्वक नहीं रहने देते। मैं बहुतेरा अपनी अप्रसन्नता प्रकट करता हूं, पर वे मानते ही नहीं।

× × × ×

"इन आने जाने वालों में एक आदत और ख़राब देखने में आयी। प्रायः सब मेरी मिट्टी लेते हैं—बार बार मेरे मुंह से मुंह लगाकर पुचकारते हैं। जब मैं राज़ी नहीं होता तो भी तरह तरह की बातें मिलाकर मुझे फ़ुसलाते हैं। ये मेरे स्वास्थ्य की दृष्टि से इस विषय पर विचार नहीं करते, केवल अपना जी राज़ी करते हैं। देखता हूं कि मेरे माता पिता भी इस ओर सतर्क नहीं रहते।'

× × × ×

मुझे खिलाने पिलाने में भी बड़ा अनर्थ किया जाता है। स्वस्थ होते हुए भी, मां मुझे अपना दूध नहीं पिलाती, जो मेरा स्वभाविक भोजन है। मुझे गाय का दूध भी नहीं मिलता। मुझे डिब्बों का दूध, चावल, पकवान, मिठाई और मसालेदार पदार्थों पर निर्वाह करना पड़ता है। ये चीज़ें मेरे शरीर के लिये गुणकारी नहीं। फिर नौकरों की बे-परवाही

से ये चीज़ें बहुधा खुली पड़ी रहती हैं। इससे इनमें धूल मिट्टी पड़ती है, और इन पर मक्खियां बैठा करती हैं। इस प्रकार ये चीज़ें और भी अधिक हानि करने वाली हो जाती हैं। मेरे मुंह में 'लेमन ज्यूस' (नीबू के सत्त) और पीपरमेंट की गोलियां आदि रखी जाती हैं। इन सब बातों से मेरा शरीर प्रायः रोगी रहता है। जब मेरे माता पिता को यह मालूम होता है कि मेरे पेट में कुछ विकार है, तो वे दवाइयों की खूब भरमार करते हैं। कोई मेरे कष्टों के मूल कारणों का विचार नहीं करता। कहां तक कहूं, मेरी व्यथा मैं ही जानता हूं।"

(तृतीय)

बच्चों के कष्ट का प्रश्न संसार-व्यापी है। निर्धन माता पिता की सन्तान को भोजन वस्त्र के अभाव बने रहते हैं। जब वे स्वयं आधे पेट खाकर और आधे नंगे रहकर निर्वाह करते हों, तो उनके बच्चे सुखी और स्वस्थ कैसे रह सकते हैं! ऐसे माता पिता को, बालक के रूप में, निर्धनता का नया भागीदार निमंत्रित करना कहां तक उचित है, यह गम्भीरता-पूर्वक विचारने की बात है। कितने गृहस्थ, विवाहित युवक और युवतियां, इस विषय पर शान्ति से सोचने बैठती हैं?

× × × ×

मध्य श्रेणी के माता पिताओं को, अपने बच्चों को सुखी बनाने के लिए, जितनी बाधा निर्धनता से मिलती है, उससे कहीं अधिक उनकी इस चिन्ता से होती है कि बिरादरी में, समाज में, कोई उनकी निर्धनता को न जान ले। वे अपनी ग़रीबी को छुपाने के लिए आवश्यकता से अधिक प्रयत्नशील रहते हैं। रीति रस्मों तथा अन्य सामाजिक व्यवहार में बालकों का सुख सुविधा कुर्बान कर दी जाती है। प्रायः प्रत्येक देश में कुछ न कुछ अन्ध विश्वास और कुरीतियां प्रचलित हैं।

× × × ×

बालकों के सुख और स्वास्थ सम्बन्धी बहुत सी बातें ऐसी हैं, जिनके लिए पैसे का विशेष प्रश्न नहीं होता। बालकों को स्नान कराने में, उन्हें साफ़ रखने में, उनके कपड़े समय समय पर धो देने में कौन भारी ख़र्च होता है ! माता पिता पर कौनसी मजबूरी है कि वे बच्चों को भूत प्रेत आदि से डराकर उनमें कायरता के संस्कार डालें या अफ़ीम आदि का हलका विष देकर उन्हें सदैव के लिए रोगी और निर्बल बनावें ! परमात्मा ने शुद्ध वायु का अमित भंडार खोल रखा है, माता पिता अपनी संतान को इससे क्यों वंचित रखते हैं ? यदि ऐसी बातों की ओर समुचित ध्यान दिया जाय, तो क्या निर्धन देशों में भी बालकों की मृत्यु-संख्या में

ख़ासी कमी न हो ? यद्यपि निर्धनता के कारण होने वाले बहुत से कष्टों को पैसे से ही दूर किया जा सकता है, परन्तु धनवान माता पिता के बच्चे भी बहुधा दुखी होते हैं, इससे स्पष्ट है कि बच्चों के कष्ट उसी समय दूर होंगे जब माता पिता की अर्थिक अवस्था अच्छी होने के साथ साथ, उनकी अज्ञानता भी दूर हो जायगी।

× × × ×

हर्ष का विषय है कि आज कल जगह जगह स्वास्थकर प्रसूतिका-गृह बनाये जा रहे हैं। जादू की लालटेन से तन्दुरुस्ती के बारे में अच्छे अच्छे शिक्षा-प्रद दृश्य दिखाने की व्यवस्था हो रही है। शिशु सप्ताह मनाये जाते हैं। सर्व साधारण के लिए उपदेश-प्रद भजन और व्याख्यान होते हैं। विवाहित महिलाओं (भावी माताओं) और बच्चों को लक्ष्य में रखकर, विशेष उपयोगी साहित्य तैयार किया जा रहा है। इस प्रकार बच्चों का जीवन सुखमय बनाने की ओर अधिकाधिक ध्यान दिया जाने लगा है। परन्तु अभी बहुत से देशों में यह कार्य नितान्त प्रारम्भिक अवस्था में है। बहुत प्रयत्नों की आवश्यकता है। प्रत्येक गांव और नगर में कितने ही ऐसे विवेकशील पुरुष-रत्नों और विशेषतया महिला-रत्नों की ज़रूरत है, जो अपने जीवन का मुख्य प्रोग्राम एक मात्र बच्चों की हित-कामना रखें। समाज और राज्य भी इस कार्य

में समुचित सहयोग दें। तभी इन 'मनुष्यों के पिताओं' के कष्ट कम होंगे, और राष्ट्रों की इस सर्वोत्तम सम्पत्ति की समुचित रक्षा और उन्नति होगी। शुभम्।

---

(४)

विधवाओं की वेदना



(मैं)

आशाओं की राख, मनोज्वाला में जली हुई हूं,
हृदय श्मशान का विराट सूनापन हूं ।
दारुण व्यथा हूं । विधवा के दग्ध उर की,
मैं व्यथित हृदय का एकान्त रुदन हूं ।

—हृदयेश

(प्रथम)

मेरी उम्र अभी चालीस से कम है तो क्या, मैं अपने जीवन में बड़े बड़े सुख दुखों का अनुभव कर चुकी हूं। ओफ़ ! कितने उलट फेर हुए हैं। आज न मालूम क्यों, वे सब के

सब, एक के बाद दूसरा मेरे हृदय पर चित्रित होते जा रहे हैं। अब मैं इस गांव में, इस छोटी झोंपड़ी में निर्धनता के दिन काट रही हूं। पहले ऐसा नहीं था। वे (मेरे पति) ख़ानदानी आदमी थे। ज़मीन जायदाद काफ़ी थी। उन दिनों हम शहर में, एक खूब बड़े आलीशान मकान में रहते थे। पर, आने जाने वालों का तांता लगा रहने के कारण, वह छोटा ही मालूम होता था। आने वालों में रिश्तेदार ही नहीं, ऐरे ग़ैरे भी बहुत होते थे, पर इस ख़ानदान से सब अपना कुछ न कुछ सम्बन्ध जोड़ लेते थे, और बड़ी युक्ति से सिद्ध कर देते थे। वे (मेरे पति) ऐसे दयालु थे कि उन्हें इस बात की परवा ही नहीं होती थी कि आश्रय चाहने वालों का हमसे कुछ नज़दीक का सम्बन्ध है, या बहुत दूर का। वे तो केवल उस व्यक्ति की स्थिति और आवश्यकताओं का विचार करके उसे यथोचित सहायता देते थे। इस प्रकार देते देते कुबेर का भी धन ख़ाली हो जाता है। पर, वे सोचते थे, कि जब तक अपने पास है क़िसी को नाहीं करना ठीक नहीं।

× × × ×

दुनियां में सब हिरती फिरती छाया है। हमारा कारोबार बिगड़ गया। आमदनी कम रह गयी। पर सामाजिक रीति भांत एक दम घटा देने का काम उनसे न बन आया।

फिर, दया के प्रार्थी कुछ न कुछ आते ही रहे। बहुतों को जवाब भी दिया जाने लगा। परन्तु जब कोई आदमी बहुत व्यथा भरे शब्दों में याचना करता तो उनसे न रहा जाता। अपनी सामर्थ्य न होने की दशा में, वे दूसरों से लेकर उसे कुछ दिला देते। उनका यह सिलसिला जारी रहने से, क्रमशः उन पर ऋण बढ़ता ही चला गया। यद्यपि किसी का तकाज़ा नहीं था, हम उस भार को किसी तरह शीघ्र ही उतार देना चाहते थे। पर जिन लोगों का रुपया हमें देना था, उन्हें जब यह मालूम हुआ कि हम अपनी जायदाद का कुछ अंश बेचकर ऋण-मुक्त होना चाहते हैं, तो उन्होंने तरह तरह की बातें बनाकर हमारा विरोध किया। कहा, 'क्या नादानी की बातें सोचने लगे, रुपया क्या कहीं मार में है; जैसा हमारे पास, वैसा तुम्हारे पास। तुम्हारे हमारे में कुछ भी अन्तर नहीं। नाहक़ ये मन-मोटाव की बातें करते हो।' निदान हम अपने विचार को कार्य रूप में परिणत न कर सके।

× × × ×

मुझे घोर दुख देखना बदा था। मैं पच्चीस वर्ष की थी। मेरा भाग्य फूट गया। मुझ अबला पर सब चिन्ताओं का भार छोड़ कर, वे सदा के लिए, सब बातों से निश्चिन्त हो गये। मैं चाहती थी, कि मैं अपने जीवन के साथ सब भावी

कष्टों का अन्त कर डालूं। मुझे प्राणों का मोह नहीं था। पर क्या करूं, उनकी सजीव धरोहर की, प्यारी पुत्री, की-रक्षा करनी थी। यदि मैं आत्म-हत्या कर लेती, तो फिर उसका कौन था ? निदान, मैंने जीवित रहने का ही विचार किया। परन्तु पास पड़ौस और भाई बिरादरी के अधिकांश पुरुष स्त्रियों ने मानों मुझे मर जाने की ही प्रेरणा की। वे बात बात में मेरा तिरस्कार करते। कोई शुभ कार्य होता और, मैं सामने आ जाती, तो वे मुंह बनाते; कोई कोई तो मुझे बुरा भला भी कहने लगता। मुझे जहां तहां अपना मुंह छिपाकर रहना पड़ता था। कुछ भले आदमी तो मेरे चरित्र के विषय में ही तरह तरह के सन्देह करने लगे; जिधर से मैं निकलती, उधर ही आवाज़ें कसी जातीं, कानाफूंसी होने लगती। कितने ही आवारा आदमी मेरी तरफ़ घूर घूर कर देखते। आह ! अच्छे कुल की महिलाओं के लिए, ऐसे समय सौंदर्य ही उनका सब से बड़ा शत्रु हो जाता है।

× × × ×

जब साहूकारों को उन के (मेरे पति के) स्वर्गवास का समाचार ज्ञात हुआ, वे अपनी पिछली बात व्यवहार भूल गये। उन्होंने साधारण मनुष्यत्व के भाव को भी जलांजलि दी, और नग्न रूप धारण करके मेरे विरुद्ध क़ानूनी कार्रवाई करनी शुरू कर दी। उन्होंने हमारी सब जायदाद कुर्क कराके ही चैन ली। उस समय मुझे दुनियां की दुरंगी चालों

का कटु अनुभव हुआ। किसी का कुछ सहारा न मिला। वे दर्जनों और कोड़ियों आदमी जो नित्य आया करते थे, सब एक दम निर्मोही हो गये। संसार में कौन किसी का है? सब पैसे के दोस्त हैं, स्वार्थ के साथी हैं। आह! मनुष्यों से प्रेम करने वाले विरले ही होते हैं, अधिकतर आदमियों की दूसरों से जो मेल मुरव्वत होती है, वह उनकी माली हालत या हैसियत के अनुसार होती है। कोई यह नहीं सोचता कि आर्थिक दशा हीन हो जाने से किसी के गुण दुर्गुण नहीं बन जाते। एक नीतिकार के शब्दों में, सब यही समझते हैं कि 'सर्वे गुणा कांचनमाश्रयन्ति'। एक समय था, जब आदमी हम से रिश्ता नाता जोड़ा करते थे, या पुराना सम्बन्ध निकालते थे। पर, अब तो ऐसी घड़ी आगयी थी कि जो रिश्तेदार हों, सगे सम्बन्धी हों, वे भी हम से दूर दूर रहें।

× × × ×

जब मैं विधवा हुई, मेरी उम्र पच्चीस वर्ष की थी। कुछ आदमियों ने मुझे पुनर्विवाह करने का परामर्श दिया। परन्तु मैंने ब्रह्मचर्य से रहना, और, अन्य महिलाओं में, उनके घर और बच्चों की सफ़ाई और तन्दुरुस्ती आदि का प्रचार करना ही अच्छा समझा।

× × × ×

(द्वितीय)

मेरी लड़की आठ वर्ष की थी, तभी से बिरादरी वालों ने

उस के विवाह की बात उठायी थी। पहले मैं उसे टालती रही। ज्यों ज्यों समय बीतता, तरह तरह की दलीलें मेरे सामने रखी जाने लगीं। आख़िर लड़की जब दस वर्ष की हुई तो मर्दों और औरतों ने मुझे बुरी तरह घेरना शुरू कर दिया। अन्ततः मैं उनका यथेष्ट विरोध न कर सकी। लड़के की खोज होने लगी। बिरादरी दूर दूर फैली हुई होने पर भी छोटी ही थी। जिस लड़के के लिये सब ज़ोर देने लगे वह चौदहवें वर्ष में था, उसका स्वास्थ्य अच्छा नहीं मालूम होता था, हां, उसके घरवालों की माली हालत बुरी न थी। बिरादरी वालों ने उसी को ठीक समझा, पुरोहितों ने भी जन्म-पत्रियों का मिलान करके उनका समर्थन किया। मेरी सलाह न थी, पर उन सब के प्रभाव में आकर बात मान ली। बरात के आगत स्वागत का कार्य दो वृद्ध महानुभावों को सौंपा गया। विवाह में ख़ासी धूम धाम रही। जाति भोज बड़ी शान के साथ हुआ, दान पुण्य में भी यथा शक्ति कुछ कसर न रही। सब लोग खुशी खुशी बिदा हुए।

× × × ×

औरों को बिदा करके मैं ने अपनी सुध ली। मालूम हुआ कि मेरे बार बार और साफ़ साफ़ यह कह देने पर भी कि हाथ रोक कर ख़र्च किया जाय, पंचों ने ध्यान नहीं दिया। विविध रीति भांति में उन्होंने इतना रुपया उड़ा दिया कि पीछे मैं

अपना मकान और ज़ेवर आदि बेच कर उसके भार से मुक्त हो पायी। शहर में बे-घर के हो जाने पर मैं यहां गांव में आयी। मेरी राम कहानी सुन कर कुछ ग़रीब आदमियों का हृदय पसीजा। उन्होंने मुझे यहां रहने की यह ठौर दी। मैं सूत कात कर, कपड़ा सींकर, कपास ओट कर और आटा पीसकर जैसे तैसे अपना गुज़ारा करने लगी।

× × × ×

सुसराल हो आने पर लड़की पूर्ववत रहने लगी, मानों इस सब धूम धाम का प्रभाव उस पर कुछ पड़ा ही न था। उसके जीवन में कोई नया अध्याय आरम्भ नहीं हुआ था। उसने विवाह को थोड़ी देर का खेल तमाशा और कुछ क़वायद-परेड मात्र समझा था। इस प्रकार पूरे छः महीने भी बीतने नहीं पाये थे, कि उसकी सुसराल से ख़बर मिली कि लड़का गुज़र गया। फिर तो जहां तहां से रोने पीटने और सहानुभूति दिखाने वालों का तांता बंध गया। वे नित्य आते; लड़की की ओर लक्ष्य करके सब यही कहते, बुरी हुई, बेचारी का भाग्य फूट गया; ऐसी उम्र में विधवा हो गयी। लड़की इन बातों का कुछ अर्थ न समझती, बार बार मुझसे पूछती, 'मां, ये क्यों रोते हैं। विधवा का अर्थ क्या है ? मेरा भाग्य कैसे फूट गया ?'

× × × ×

तीज त्यौहार के दिन हमारे यहां गली मोहल्ले की लड़कियां आतीं। उनके कपड़े आभूषण आदि देखकर मेरी लड़की मन ही मन बड़ा दुख मानती। आगे पीछे, वह मुझ से कहती "मां देख! मेरी यह सहेली कैसे सुन्दर वस्त्र पहने हुए है। उसकी मां भी तो तेरे जैसी ही ग़रीब है। तू मुझे ऐसे बढ़िया कपड़े क्यों नहीं देती। सन्दूक में जो गोटे किनारी वाली रेशमी साड़ी रखी है, वह तू ने मेरे लिये ही तो मंगायी थी, अब वह किस के लिये रख छोड़ी है। मेरे आभूषण तो बिक ही गये; तू मुझे चूड़ियां भी नहीं पहिनने देती; सिंदूर और महावर लगाने से भी रोकती है। अपनी सखी सहेलियों में, मेरा यह भिखारिन का सा भेष मुझे बड़ा कष्टदायी मालूम होता है; तुझे यह कैसे सुहाता है?"

× × × ×

इस प्रकार दो तीन वर्ष बीत गये। मैं और लोगों की बातें सुनती, साथ ही लड़की की बातों पर विचार करती। धीरे धीरे मेरे ध्यान में यह बात आयी कि मेरी बालिका तो निरी अबोध है। इसे विधवा समझना सरासर अन्याय है। अन्ध-कूप बिरादरी-वालों और स्वार्थी पुरोहितों के प्रभाव में आकर इसका सम्बन्ध कर दिया था। वरना यह तो विवाह योग्य ही न हुई थी; अब इसका (दूसरा) विवाह करने में किसी विचारशील को आपत्ति न होनी चाहिये। हमारे ऐसे

विचार जान कर बिरादरी में खूब हो-हल्ला मचा। लड़की के सुसराल वालों ने खुल्लम खुल्ला लड़ने की ठानी। पंडितों ने अलग चिल्लाना शुरू किया, 'धर्म डूब गया है, कलियुग आ गया है।' चहुं ओर विरोधी खड़े हो गये। हमें सामाजिक बहिष्कार की धमकी दी गयी। बहुतेरे हमें कहने लगे कि तुम ज़रूर नरक में जाओगे। मैं ने मन में सोचा कि लड़की के जन्म और पालन पोषण में इतना कष्ट सहा है, यह मेरी प्यारी सन्तान है, तो क्या मुझे इसके सुख के लिये इन विरोधियों का कटु व्यवहार भी नहीं सह लेना चाहिये! और, सन्तान के प्रति कर्तव्य-पालन के उपलक्ष्य में यदि नरक भी मिलता हो, तो क्या उसे भी स्वीकार करना, माता के नाते, मेरा धर्म नहीं है?

× × × ×

(तृतीय)

संसार में छोटी बड़ी उम्र की अनेक विधवायें हैं। यह ठीक है कि भारतवर्ष में इनकी संख्या विशेष है। और, यहां इनकी जटिल समस्या विशेषतया ऊंची समझी जाने वाली जातियों में ही है। अन्य देशों में प्रायः बाल विवाह न होने से बाल-विधवायें बहुत कम होती हैं; और विधवाओं के पुनर्विवाह प्रचलित होने से उन्हें खान पान आदि की चिन्ता में ग्रस्त होना नहीं पड़ता। तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि विधवा की वेदना एक-देशीय है। अनेक विधवायें, पुन-

विवाह हो जाने पर भी मानसिक कष्ट से पूर्णतः मुक्त नहीं होतीं। हां, सामाजिक वातावरण की अनुकूलता में, सर्व साधारण की सहानुभूति से, औरों की दृष्टि में अमंगल-रूप न मानी जाने से, विधवाओं की मानसिक चिन्ताओं का भी कुछ कम हो जाना स्वभाविक है।

× × × ×

चौदह पन्द्रह वर्ष से पहिले बालिकाओं को (और बीस बाईस वर्ष से पहिले लड़कों को) विवाह-बन्धन में डाल देना सरासर अन्याय करना है। यह कदापि न होना चाहिये। जब ऐसी व्यवस्था हो जायगी, बाल विधवाओं का होना स्वयं बहुत कम हो जायगा। कुछ आदमी यह तो कह देते हैं कि स्त्रियों को पतिव्रत धर्म का पालन करना चाहिये, पर जिस उम्र में लड़की यह नहीं समझती कि पति क्या होता है, वह उसके सम्बन्ध में धर्म का पालन कैसे कर सकती है ? विधवा वह है जो स्वयं वैधव्य को समझे, अब तो बहुत सी बाल-विधवाओं को वैधव्य का ज्ञान समाज कराता है।

× × × ×

यथेष्ठ आयु में विवाह होने की दशा में भी जो स्त्रियां विधवा हो जाया करें, उनके सम्बन्ध में विचार करने की बात यह है कि जहां तक बने गृहस्थ में ऐसा वातावरण रहना चाहिये कि विधवाओं के मन में चंचलता या उद्विग्नता

न आये। सधवाओं को भी यथा सम्भव संयम और सादगी का व्यवहार रखना चाहिये, प्रति दिन उनका फैशन और शृंगार देखते हुए विधवाओं से सन्यास आश्रम का सा कठोर धर्म पालन होना कठिन है। यह भी प्रबन्ध होना चाहिये कि विधवाओं के लिये, अपने अपने घर में ही रहते हुए, अथवा साधु सच्चरित्र सज्जनों और विशेषतया महिलाओं के निरीक्षण में, समुचित आजीविका की व्यवस्था हो। पुनः सब विधवाओं से ऊंची आशायें नहीं की जानी चाहियें। यदि कोई पुनर्विवाह की इच्छुक हो, तो बजाय इसके कि वह चोरी से पापाचार में प्रवृत्त हो, औरों को पथ-भ्रष्ट करने वाली बनें, तथा भ्रूण हत्या का कारण हो, यह कहीं अच्छा है कि उसके पुनर्विवाह की व्यवस्था की जाय। रूढ़ि या धर्म की दुहाई देकर, वस्तु-स्थिति से आंख मीचना अनुचित है।

× × × ×

इन बातों पर ध्यान देने से, बहुत से देशों में विधवायें, तथा उनके कष्ट बहुत कम हो गये हैं। तथापि अभी भारतवर्ष आदि में इनकी समस्या काफ़ी भयंकर रूप से विद्यमान है। आवश्यकता है कि स्त्रियां स्वयं भी इस विषय में यथेष्ट सुधार करने का बीड़ा उठावें; और प्रत्येक जगह की परिस्थिति का सम्यग् अनुभव करके, यथा योग्य उपाय काम में लावें। शुभम्।

(५)

मज़दूर की वेदना

(मैं)

धनियों का वैभव, विलासियों का भोग नहीं,
भूखे श्रमजीवियों की वेदना अपार हूं।
ज़ार का प्रमाद, नेपोलियन का मद नहीं,
पीड़ित प्रजा की मैं विराट हाहाकार हूं॥

—हृदयेश

(प्रथम)

आह! आज तो बुरी दशा है। चिन्ता और थकान को हटाने वाली नींद कोसों दूर भाग गयी है। अब रात काटनी भारी पड़ रही है। और, रात्री के बाद प्रभात आयेगा, तो

ही मुझे क्या न्यारा सुख समाचार मिलेगा। अपनी तो रोज़ वही दिनचर्या। सवेरे उठ कर पहिले काम तलाश करने की चिन्ता सवार होती है। इधर उधर, यहां से वहां भटकना होता है; कितनी देर, इसका कुछ निश्चय नहीं। जिस दिन काम न मिले, उस दिन पेट नहीं भरेगा। जब काम मिल जाय, तो अपने भाग्य को सराहो। दिन भर काम पर रहो। बीच में दो घंटे की छुट्टी, चाहे स्नान कर लो और खाना खालो; और चाहे विश्राम कर लो। फिर जो काम पर गये तो शाम तक वहां के हो गये। जो पैसे मिलें उनसे रोटी का सामान ले आओ; रात को चूल्हे का काम करो, जैसे तैसे पेट भरो और पड़ रहो। फिर जब सवेरा होगा, तो फिर वही दिनचर्या, इसमें कोई नवीनता नहीं, सब यंत्र की भांति नीरस प्रणाली है।

× × × ×

मेरी बाल्यावस्था में ही माता मुझे छोड़ कर चल बसी थी। पिता दिन भर, और बहुधा कुछ देर रात तक भी मज़दूरी में लगे रहते। साथ में वे बिचारे मुझे भी लिये लिये फिरते। जब मुझ में थोड़ा बहुत काम करने की शक्ति आयी तो मुझे भी अपना पैत्रिक कार्य आरम्भ कर देना पड़ा। अच्छा होता कि मैं कुछ पढ़ना लिखना तथा दस्तकारी सीख लेता। परन्तु यह हो कैसे सकता था ? पिता की मज़दूरी से

हम दोनों का पेट अच्छी तरह नहीं भरता था। इसलिये, जब मैं दस ग्यारह वर्ष का ही था पिता ने मुझ से कहा, 'बेटा ! तू भी कुछ हाथ पांव हिला। दो चार पैसे जो कुछ मिलें, सो अच्छा है।' बस, मैं ने भी जीवन-संग्राम में प्रवेश कर लिया। पहले कुछ दिन तो पिता के साथ गया, जहां कहीं उन्होंने ठीक समझा, मुझे काम पर लगाया। पीछे मैं अपने लिये स्वयं काम की तलाश करने लगा। धीरे धीरे कुछ अनुभव हो गया।

× × × ×

तीस इकतीस वर्ष की उम्र में जवानी होनी चाहिये; परन्तु यथेष्ट भोजन न मिलने, मानसिक चिन्तायें रहने, तथा स्वास्थ सम्बन्धी अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति न होते रहने के कारण पिता को बुढ़ापा आ गया था। एक बार महिना भर बराबर बुख़ार में पड़े रहे। उस दशा में उनकी आमदनी तो बन्द हो गयी। मेरे लिये भी यही दुविधा रहती कि इनकी बीमारी में इनके पास रहकर कुछ सेवा सुश्रशा करूं, या मज़दूरी पर जाकर कुछ पैसे लाऊं जिससे मेरा पेट भरे और इनके लिये भी खान पान आदि का कुछ प्रबन्ध हो। आख़िर, उन्हें खटिया में पड़े छोड़ कर मज़दूरी के लिये जाने का निश्चय रहता। एकाध बार कुछ दवा दारू की बात उठी, पर पीछे यह सोच कर रह गये कि ये तो अमीरी के चोचले हैं। अपनी तो दवा

दारू रोटी ही है। उनकी बीमारी बढ़ती ही गयी, इलाज कुछ न हो सका। आखिर वे इस संसार के दुखों से पूर्णतः छुटकारा पा गये। उनके पीछे मैं अकेला रह गया। क्या करूं ? बड़ा दुखी हूं।

× × × ×

(द्वितीय)

मेरे भाई बन्धुओं की दशा काफ़ी चिन्तनीय है। हर समय कर्तव्य कर्म की चिन्ता में लगे रहने के कारण हमें निद्रा तथा आराम के वास्ते बहुत कम छुट्टी मिलती है। प्रति दिन बहुत सबेरे से लेकर, रात को बहुत देर तक हम संसार को कर्मयोगिता की क्रियात्मक शिक्षा देनी होती हैं। यही कारण है कि हमें मुक्ति जल्दी प्राप्त हो जाती है; और लोग इस कर्मभूमि में ५०, ६० वर्ष तक पड़े रहते हैं, तो हमें प्रायः पच्चीस तीस वर्ष की उम्र में ही छुटकारा मिल जाता है। जब हम औरों के लिये महल या भवन बनाने में सर्दी, गर्मी, धूप छांव एक कर देते हैं तो अपने लिये केवल क़ब्र या चिता-स्थान का ही निर्माण करते हैं। जीते जी दूसरों के वास्ते नित्य सहस्त्रों गज़ कपड़ा बुनते रहने पर भी हमारे मरने पर हमें कफ़न का प्रायः अभाव ही रहता है।

× × × ×

हमारा ख़ानदानी नाम मज़दूर है। हमारा कारोबार किसी प्रान्त या देश विशेष में सीमा-बद्ध नहीं है, वह संसार

भर में फैला हुआ है। हमारी माता की जाति निर्धनता है। उसकी ही गोद में हमने परवरिश पायी है। हमने अपनी घुटी के साथ ही नौकरी, गुलामी या दासत्व-धर्म की दीक्षा ली है। जब से हम में कुछ करने धरने की सामर्थ आयी, हम निरंतर अपने प्रभु की, पूंजीपति की, सेवा पूजा में लगे रहते हैं।

× × × ×

चाहे स्वयं हमारे लिए खाने पहिनने को न हो, हमारे नन्हे बच्चे दूध आदि के अभाव से बिलख बिलख कर भले ही मर रहे हों, या लड़के लड़कियां शिक्षा और स्वास्थ्य के साधनों से वंचित हों, हम रोग-शय्या पर पड़े हों, या मृत्यु की प्रतीक्षा में अपने अन्तिम श्वास गिन रहे हों, हम अपने इष्ट-देव पूंजीपति की दिन दूनी रात चौगनी बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के प्रयत्न में बेचैन रहते हैं। यही नहीं, हम अपने स्वामी के पालतू कुत्ते, बिल्लियों और घोड़ों तक के लिए मख़मली गद्दियां और षट्रस भोजन के विविध साधन जुटाने में दत्त-चित रहते है। हम खेतों में और खानों में, बाग़ों और कारख़ानों में, पहाड़ों और समुद्र में, सूर्य चन्द्रमा के स्वाभाविक प्रकाश में, या बिजली गैस आदि के कृत्रिम उजाले में, थरथर कांपते हुए या पसीना बहाते हुए मालिक का हक़ अदा करते रहते हैं। फिर भी उसकी हम पर प्रायः टेढी ही निगाह रहती है। क्या यह इस लिये

कि हम बेहद भोले हैं, हमें अपनी सेवा का मोल तोल करना नहीं आता ?

× × × ×

क्या हमारे मज़दूर भाई प्राचीन गुलामों से कुछ अच्छे हैं ? उन्हें भर पेट रोटी और तन ढकने को कपड़ा तो मिल ही जाता था। अब तो हमें मज़दूरी में कुछ धातुओं के टुकड़े मिलते हैं, उनके विनिमय में जो आवश्यक वस्तुएं मिल सकती हैं, उनसे हमारा निर्वाह होता है, या नहीं, इसकी किसी को चिन्ता नहीं। प्राचीन काल में स्वामी दासों का मूल्य चुकाता था, इस लिये उसे, अपने स्वार्थ की दृष्टि से ही क्यों न हो, यह फ़िकर रहती थी कि कहीं वे मर न जांय। पर अब, अगर कुछ मज़दूर भूखे नंगे रहने से मर जांय तो मालिक की बला से। उनका काम करने के लिये दूसरे तैयार हैं। और हां, सम्भव है, नये मज़दूर और भी सस्ती दर पर अपने सुख स्वास्थ्य को बेचने वाले हों।

× × × ×

कोई यह नहीं सोचता कि हमारे भी जान है। हमें सर्दी गर्मी, भूख प्यास लगती है। हमें विश्राम की आवश्यकता है। हमें हर्ष शोक तथा सुख दुख का अनुभव होता है। बीमारी में हमें दवा दारू की ज़रूरत पड़ती है। इन बातों का समु-

चित विचार या प्रबन्ध कौन करता है। मालिक का काम ठीक हो गया, उसे पसन्द आ गया तो वह दो पैसे हमारे मत्थे मार देगा, नहीं तो उससे भी गये। हम से कहा जाता है, कि स्वतन्त्रता का ज़माना है, तुम्हारी इच्छा हो तो काम करो, नहीं तो छोड़ कर चले जाओ। अरे, काम छोड़ दें, तो पापी पेट को क्या दें ? और हां, जिहें प्रतिज्ञा-वद्ध होकर मज़दूरी करनी होती है, उन्हें तो काम छोड़ने की भी स्वतन्त्रता नहीं।

× × × ×

(तृतीय)

स्वार्थी उपदेशकों ने हमारी वर्तमान हीनता को धर्म का जामा पहना दिया है। वे इसे हमारे भाग्य की बात कहते हैं। वे आर्थिक दुर्व्यवस्था की समस्या को वास्तविक उपायों से सुलझाने का प्रयत्न नहीं करते। घर की सम्पत्ति का लाभ सब घर वालों को मिलता है, देशों के धन के उपयोग का अधिकार सब पुरुष स्त्रियों को होना चाहिये। अपने स्वार्थ के लिए किसी को भाग्यवान, और किसी को अभागा कहना असत्य है, अधर्म है।

× × × ×

अधिकांश देशों में मुट्ठी भर आदमी पूंजीपति होते हैं तो असंख्य मज़दूर। पूंजीपति को खाने पहनने, और ऐशोआराम करने के लिये परिश्रम नहीं करना होता। वह सट्टे फाटके,

दलाली, कल कारखाने आदि से सम्पत्ति संग्रह करने वाला होता है, या अपने वंशागत या दैवी अधिकार से राजा, नवाब, तालुक़ेदार या मठाधीश आदि बना होता है, या झूंठ सच से, जनता को नियंत्रित करने में राज सत्ता का साथी रहने के कारण उसका कृपा-पात्र होता है। मज़दूर का अर्थ सीधा साधा है, जो शारीरिक या मानसिक मेहनत मज़दूरी करके खाता हो, मुफ्त की रोटी न पाता हो; अपने हाथ पांव हिलाकर, पसीना बहाकर अपना तथा अपने बाल बच्चों का पेट पालता हो। किसान, शिकमी काश्तकार, खेतों, खानों, और मिलों में काम करने वाले, लेखक, सम्पादक, अध्यापक, घरेलू नौकर चाकर, कारीगर आदि मज़दूरों की श्रेणी में गिने जाते हैं।

× × × ×

अच्छा, अनेक कठिन परिश्रम करने वालों को बहुत कम वेतन क्यों मिलता है, जब कि बहुत से कुछ भी कार्य न करने वाले धनवान बने रहते हैं ? मज़दूर भूखे नंगे और निर्धन यों हैं ? निर्धनता के कारण वे ठिगने, कमज़ोर और मतिमन्द रहते हैं। उनकी नैतिक उन्नति भी नहीं होने पाती। निर्धनता चोरी कराती, डाके डलाती है, आत्म हत्या तक कराती है। धनोत्पादन के लिये नये नये यंत्रों और वैज्ञानिक आविष्कारों से युक्त योरप आदि महाद्वीपों के सभ्य देश क्या वास्तव

में निर्धन नहीं हैं ? क्या वहां धन की कुल राशि बहुत बड़ी होते हुए भी, उसका उपयोग कर सकने वालों की संख्या बहुत थोड़ी होने के कारण, असंख्य मनुष्य अत्यन्त कष्टमय जीवन व्यतीत नहीं कर रहे हैं ? क्या यह सभ्यता सर्वसाधारण की निर्धनता को बढ़ाने वाली नहीं है ? क्या यह व्यवस्था केवल इस लिए जायज़ समझी जा सकती है कि कुछ स्वार्थी आदमी इसका समर्थन करते हैं और उनके प्रभाव में आकर विविध देशों की सरकारों ने उसे मान्य कर लिया है ? ऐसी व्यवस्था में आमूल परिवर्तन किये बिना संसार को सुख शान्ति नहीं मिलेगी।

× × × ×

योरप अमरीका के मज़दूरों ने संगठित रूप से अपना कर्तव्य पालन करके अन्य बन्धुओं को रास्ता बता दिया है। उन्होंने अपने अपने देशों की राजनीति के दोषों को दूर कर दिया है। फिर एशिया और अफ्रीका आदि देशों के मज़दूर अपना उत्थान करने के लिये क्यों न कटिबद्ध हों। मज़दूरों का प्रधान शत्रु उनकी कायरता है। काम, क्रोध, लोभ; और मोह पर नियंत्रण करने वाला संसार को विजय कर सकता है। परमात्मा उन्हें बल दे, वे अपना उद्धार करें, और अपने विपक्षियों को भी श्रम की महत्ता और प्रतिष्ठा सिखावें।

× × × ×

अब श्रमजीवियों का युग आ रहा है। उनके हित-साधन की ओर अधिकाधिक ध्यान दिया जाने लगा है। इस बात को स्वीकार किया जाने लगा है कि दिन रात मेहनत मज़दूरी करके भी यथेष्ठ भोजन वस्त्र न पा सकना आधुनिक समय का बहुत भयंकर आश्चर्य है। ऐसी बात को असम्भव बना देना आवश्यक है।

× × × ×

इतिहास में महन्त, धर्माचार्य आदि ब्राह्मणों, मुल्लाओं और पादरियों का दौर दौरा रह चुका; बादशाहों, नवाबों, सरदारों और सेनापतियों आदि क्षत्रियों की धूम धाम भी रह चुकी। कहीं कहीं, कुछ देशों में इनकी यादगार के काफ़ी चिन्ह अभी तक मौजूद हैं। महाजनों और पूंजीपतियों का शासन तो बहुत से देशों में चल ही रहा है। पर अब शक्ति और सत्ता की नकेल सदा सर्वदा इनके ही हाथों न रहेगी। ये सब बने रहें, और साधारण सुविधा-पूर्वक जीवन व्यतीत करें, इसमें कुछ आपत्ति नहीं। पर ये जो अब तक श्रमजीवियों, मज़दूरों, या शूद्रों से घृणा करते रहे, उस भाव का अब अन्त होना ही चाहिये। अब तो सब को श्रम या मज़दूरी की प्रतिष्ठा करनी होगी।

× × × ×

अब किसी को मुफ्त की रोटी न मिलेगी। केवल रोगी

और अशक्त क्षमा किये जांयगे, अन्य हाथ पांव न हिलाने वालों को समाज का निकृष्ट अंग समझा जायगा। राजनीति में उनका कोई स्थान न होगा, वह समय आ रहा है कि उन्हें नागरिकता का सामान्य अधिकार—वोट या मत देने का अधिकार--भी न मिलेगा। भावी शासन-सूत्र स्वावलम्बी और परिश्रमी नागरिकों के हाथ में होगा; फिर श्रमजीवियों की कोई पृथक श्रेणी न होगी। सभी स्वाभिमानी पुरुष स्त्रियां श्रमजीवी होने में अपना गौरव और प्रतिष्ठा समझेंगी। अहा! इस नवयुग में 'श्रमजीवी' और 'मज़दूर' क्षब्द वैसे ही महानता-सूचक होंगे, जैसे ये अब तक निम्नता या लघुता सूचक रहे हैं। शुभम्।

---

(६)

किसान की वेदना

कैसे अदा होवे कर, कहां से चुकावें ऋण,
घर में ठिकाना नहीं, मुट्ठी भर दानों का।
पेट भरने के हेतु, दाना भी न देत कोई,
कीजिये सहाय नाथ, अन्त होता प्राणों का॥

—रामचरण 'चन्द्र'

(प्रथम)

मैं क्या कहूं ! कुछ कहना नहीं आता; ग्रामीण और गंवार हूं; कुछ कहना सीखा ही नहीं। मेरे मन में असंतोष की ज्वाला जल रही है। हृदय में विप्लव की सी लहर उठती है। मैं

अत्यन्त कष्ट-पीड़ित हूं; वर्तमान स्थिति से ऊब गया हूं। परन्तु क्या कहूं ? कष्ट सहते सहते उसकी आदत सी पड़ गयी है। भीतर ही भीतर बड़ी वेदना होती है, जी घबराता है, पर समझ नहीं पड़ता कि उसे कैसे व्यक्त करूं। कोई महान आत्मा मेरे हृदय के भावों को जानकर उन्हें व्यक्त करे तो काम चले। अथवा परमात्मा मुझे ही ऐसा बल दे कि मैं अपने समाज का मुख बनकर, उसकी अव्यक्त वेदना से संसार को परिचित कर दूं।

× × × ×

हर साल मेरे खेत में जितना अन्न पैदा होता है, उससे मेरे परिवार जैसे कितने ही परिवारों का खूब मज़े से पालन पोषण हो सकता है। मेरे परिवार में हैं ही के आदमी ! मैं, मेरी स्त्री, और दो लड़के, एक दस वर्ष का और एक दो वर्ष का। पिछले साल बारिश कम हुई थी, टिड्डियों ने भी नुक़सान पहुंचाया था, परन्तु इस पर भी जब फ़सल का नाज इकट्ठा किया गया तो वह इतना था कि हम छोटे बड़े चार प्राणियों के लिए तीन साल के लिए तो ज़रूर ही काफ़ी होता। पर यहां तो पांच महीने भी जैसे तैसे बीतने पाये, तब से उधार और क़र्ज़ ले ले खा रहा हूं।

× × × ×

इसका अनुमान तो फ़सल इकट्ठी होने के पन्द्रह दिन के

भीतर ही हो गया था। सरकारी कर्मचारियों ने अपनी ख़ैरख़्वाही दिखाने के लिये, फ़सल ख़राब होने की सूचना ऊपर के अधिकारियों को नहीं दी थी। इसलिये ज़मींदारों से ली जाने वाली मालगुज़ारी में कुछ कमी न हुई। बस ज़मींदार के कारिन्दे पूरा पूरा लगान वसूल करने के लिये मुस्तैद हो गये। मैं झटपट नाज बेचने को मजबूर हो गया। मेरी जल्दबाज़ी से दाम अच्छे न उठ सके। पर मुझे तो उन ख़ूँख़्वार कारिन्दों से जैसे बने, अपना पिंड छुड़ाना था; लगान अदा किया; साथ ही पटवारी आदि विविध अहलकारों के तरह तरह के 'हक़' भी अदा किये।

× × × ×

साहूकार का गुमाश्ता मेरे सिर पर सवार था। पिछली साल एक भाई से ज़रा तकरार हो गई थी। लोगों ने उसे भड़का कर पुलिस में मारपीट की 'रपट' करा दी। मुक़द्दमें की बला खड़ी हो गयी। मुझे साहूकार से दस रुपये उधार लेने पड़े। मुझे बीज का भी दाम चुकाना था। बस, यह साहूकार अपने आपको मेरे उस सब नाज का मालिक समझने लग गया जो ज़मींदार और सरकारी अहलकारों आदि का भुगतान करने पर शेष रहे। उसने ऐसा टेढ़ा मेढ़ा हिसाब लगाया कि मेरी ख़ाक समझ में नहीं आया। जब मैं ने बहुत गिड़गिड़ा कर उससे कुछ छूट की प्रार्थना की तो उसने बड़ी दया और

अहसान दिखाते हुए कहा, 'अच्छा ! तू बाल बच्चों वाला है, तेरे वास्ते यह छोड़े देता हूं; मैं अपनी वाक़ी का हिसाब अगली फ़सल में लगा लूंगा।' बाप रे बाप ! इतना तो नाज उसके घर पहुंच गया, फिर भी अगली फ़सल के वास्ते उसका कुछ अधिकार शेष ही रहा !

× × × ×

अगर मैं कुछ पढ़ा लिखा होता, तो इस दिन दहाड़े की लूट से थोड़ा बहुत तो बच ही जाता। मैं तो यह भी नहीं समझता कि कारिन्दे ने रसीद में क्या लिखा है, और बनिये ने ऋण का ब्याज किस हिसाब से लगाया है। मुझे तो सौ तक की गिनती भी नहीं आती। लगान चुकाने के लिए जब रुपये भरने हुए तो बीस बीस की पांच ढेरी लगा कर मैं समझा कि अब सौ हुए। मेरे बड़े लल्लू की उम्र पढ़ने की है, उसका मन भी बहुत है। उसने कई बार कहा कि 'मेरी उम्र के गली मौहल्ले के कई लड़के पाठशाला जाते हैं, तुम मुझे वहां क्यों नहीं जाने देते।' क्या जवाव दूं ? पढ़ने का लाभ तो मैं बखूबी जानता हूं। पर करूं क्या ? मुझे अपनी खेती-बाड़ी के काम में उससे जो सहायता मिलती है, वह फिर कैसे मिलेगी ? और, मैं भविष्य के लाभ के लिए, इस वर्तमान आवश्यकता की पूर्ति से कैसे उदासीन रह सकता हूं ?

× × × ×

अरे ! मेरे घर में न किसी को सुख मिला, न मिले। मेरी स्त्री की गोद में छोटा बालक है, फिर भी घर का और खेत का, रोटी पानी का और हल बैल का सब काम उसी बेचारी को करना पड़ता है। वह सर्दी गर्मी और धूप छांव सब सहती है, और उसका फल साथ में छोटे बालक को भी भुगतना होता है। लोग कहा करते हैं कि बचपन में बादशाहत होती है। पर मेरे बालकों को जैसी बादशाहत मिली है, परमात्मा वैसी किसी को न दे। ओफ़ ! बेचारों को कितने कष्ट उठाने पड़ते हैं। उनके भाग्य का दोष। न वे किसान के घर जन्म लेते, और न उन्हें ये दुख देखने पड़ते !

× × × ×

इस साल फसल अच्छी हुई है। बारिश की कमी या ज़्यादती नहीं हुई। टिड्डी आदि से भी कुछ नुक़सान नहीं पहुंचा। नाज सस्ता हो गया। लोग बहुत खुश हो रहे हैं। परन्तु, अफ़सोस ! इससे मेरे सामने नयी समस्या खड़ी हो गयी है। अब नाज के दाम कम उठेंगे; और मुझे भूमि-कर या लगान, और साहूकार का ऋण चुकाना है, नक़दी में; वह कैसे चुकेगा ? यही रोना है। इसी लिए मैं कहता हूं कि 'हे परमात्मा ! तू ने पिछले साल फ़सल ख़राब करदी थी, तब मुझे उसकी शिकायत थी. इस बार तू ने मेहरबानी करके फ़सल अच्छी करदी तो मुझे इस मेहरबानी पर भी दुख ही

है। वास्तव में तेरा दोष ही क्या! मुझे हर हालत में दुख ही पाना है। मैं यह नहीं वता सकता कि किस दशा में मुझे सुख होगा। अगर मुझे कोई मेरा मुंह मांगा वरदान दे दे, तो भी मेरा विशेष हित न हो सकेगा।

× × × ×

मैं ने एक आदमी को कहते सुना था कि "उत्तम खेती, मध्यम व्यापार, नीच चाकरी भीख निदान"। क्या यह कहावत कभी इस पृथ्वी के किसी भाग में चरितार्थ हुई होगी? मुझे तो विश्वास नहीं होता। विश्वास हो भी कैसे? इस वर्ष मेरी फसल के जितने दाम उठ सकते हैं, उससे खेती के ख़र्च की तीन मद्दों—मज़दूरी, लगान और बीज-के दाम भी वसूल होने वाले नहीं। बैल, खाद और औज़ार आदि का हिसाव तो अलग रहा। और हां, साल में जितना समय खेती का काम न रहने से मुझे ख़ाली रहना पड़ता है, उसका भी मैं ने विचार नहीं किया। यदि मैं साहूकार को बीज के दाम नहीं चुकाता, तो वह मुझे बेईमान प्रसिद्ध करता है; अगर लगान नहीं चुकाता तो सरकार मुझे बाग़ी ठहराती है। कोई मेरी आर्थिक स्थिति का विचार नहीं करता।

× × × ×

मैं अपने खेत में इतना गेंहू, चावल, चना, वाजरा, ज्वार, मक्का, मूंग, उड़द आदि पैदा करता हूं, फिर भी मुझे दो

वक्त भर-पेट रोटी नहीं मिलती। मेरे खेतों में आलू, गोभी, मटर आदि इतनी प्रकार के शाक भाजी पैदा होते हैं, पर वे मेरे कुछ काम नहीं आते; बाज़ार-भाव से बेच देने होते हैं। मुझे तो बिना शाक तरकारी के, केवल रोटी ही काफ़ी मिल जाय तो भी मैं अपने भाग्य को सराहूं। मेरे पास गाय और भैंस हैं। मेरे घर में दूध दही मक्खन सब कुछ होता है, परन्तु उसके होने से मुझे क्या लाभ है? मुझे तो जब तब मट्ठे से ही संतोष करना पड़ता है। पिछले साल इतनी कपास मेरे खेत में हुई थी कि उसकी रुई के सूत से मेरे परिवार के लिए कई सौ जोड़ी कपड़े बन सकते थे, पर यहां तो मैं और मेरे घर वाले सब तीन साल के पुराने फटे कपड़ों में ही अपनी गुज़र कर रहे हैं। हरे! क्या क्या कहूं; किस से कहूं?

× × × ×

मैं देखता हूं कि जो ज़मींदार, वकील या अन्य पैसे वाले देश के कामों में कुछ चन्दा दे देते हैं वे बड़े देश भक्त और राज्य-स्तम्भ प्रसिद्ध किये जाते हैं। मैं अपना जी मसोस कर रह जाता हूं। मेरे पास देने दिलाने को रखा ही क्या है। जिस ज़मीन के टुकड़े को मैं जोतता और बोता हूं वह भी राज्य का (अथवा ज़मींदार का) समझा जाता है। मैं तो अपना और अपने परिवार वालों का शरीर ही कुर्बान कर सकता हूं, और, उसे न्यौछावर करता ही रहता हूं। और हां,

ऐसे देश और समाज के प्रति मेरी विशेष भावना हो ही क्या सकती है, जिसमें मुझे खाने पहनने की साधारण सामग्री भी काफ़ी नहीं मिलती, और मेरी गाढ़ी कमाई से कुछ मुट्ठी भर आदमियों का व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्ध होता है ! मेरा जीवन अपमान की तरह अपमानित है, मेरा कोई सम्मान या आदर नहीं। मैं नीचे दर्जे का, और गंवार समझा जाता हूं; और पद पद पर ठोकरें खाता हूं; सब के क्रोध और अहंकार का भाजन बनता हूं। क्या सृष्टि में मुझ से घटिया भी कोई वस्तु होगी ?

× × × ×

(द्वितीय)

आज कल संसार के अनेक देशों में, विशेषतया जहां जनता के प्रतिनिधियों का यथेष्ठ नियंत्रण नहीं है, उन भागों में, पटवारी, अमीन, कारिन्दे, तहसीलदार और थानेदार से लेकर बड़े से बड़े अधिकारी किसानों के परिश्रम के बल पर मौज उड़ाते हैं। किसान सर्दी गर्मी सहता और दौड़ धूप करता है; फिर, कमोबेश क़ीमत देकर सबकी प्रसन्नता ख़रीदना उसका कर्तव्य होता है । जहां देखो रिश्वत और डाली भेंट आदि का बाज़ार गर्म मिलता है। जिसको, कुछ नज़र न किया जाय, वही त्योरी चढ़ाता है। प्रत्येक वाद विवाद के विषय में वकील को मेहनताना दिये बिना गुज़र

नहीं। सरकारी अदालत का न्याय कोर्ट-फ़ीस और गवाहों की आवभगत के हिसाब से बिकता है। अगर किसान में यह सौदा करने की सामर्थ्य नहीं तो वह सच्चा होते हुए भी सहज ही झूठा प्रमाणित होजाता है। भगवन्! वह किसकी शरण जाये।

× × × ×

इन बातों में सुधार करने की बड़ी आवश्यकता है। किसानों को समुचित शिक्षा मिलने की व्यवस्था होनी चाहिये। उन्हें अपने अधिकारों से इतना परिचित करा दिया जाना चाहिये कि कोई उनसे अनुचित लाभ न उठा सके। साथही प्रत्येक देश में राज्य को कृषि की उन्नति करके उपज बढ़ानी चाहिये; और दस्तकारी और उद्योग धन्धों की वृद्धि करके लोगों की आर्थिक दशा ऐसी सुधारनी चाहिये जिससे यह नौबत ही न आने पाये कि वे अपने यहां के उत्पन्न पदार्थ न ख़रीद सकें और विदेशी व्यापारी बहुतसा माल ले जाते रहें। किसानों पर सरकारी लगान आदि का भार भी ऐसा न होना चाहिये कि वे इतना अन्नादि बेचने पर वाध्य होजांय कि स्वयं उनके पास सालभर के ख़र्च लायक भी न रहे।

× × × ×

क्या सब सुधार राज्य के ही करने के हैं? क्या हमारा भी कुछ कर्तव्य नहीं है? हमारी वर्तमान हीन दशा में हमारा

भी तो काफ़ी भाग मालूम होता है। हम हर समय तो खेती में लगे नहीं रहते। साल में कुछ महिने और दिन में कुछ घंटे की फुरसत मिलती ही है। हम इसका सदुपयोग कब करते हैं। यहां वहां की गप शप और भद्दे खेल तमाशों में ही हम सब वक्त खराब कर देते हैं; किसी गृह-शिल्प में मन नहीं लगाते। यदि हम अपनी कुछ कपास ओटने, उसका सूत कातने और कपड़ा बुनने या बुनवाने की ओर ध्यान दें, तो क्या हमारा, कपड़े का अभाव बहुत कुछ दूर न होजाय ?

× × × ×

वाद विवाद का विषय उपस्थित होजाने पर यदि हम अपने भाई बिरादरी में से समझदारों और बड़े बुजुर्गों की सहायता से काम लें तो क्या सहज ही उसका निपटारा न होजाय ? शान्ति-पूर्वक परस्पर में समझौता न कर हम बात बात में अदालती कार्रवाई करने पर उतारू होंगे तो वकीलों की फ़ीस, अहलकारों का इनाम, स्टाम्प की क़ीमत, तथा गवाहों का भोजन और मार्ग-व्यय आदि भरना ही पड़ेगा। अदालतों में जाने पर तो 'जीता सो हारा, और हारा सो मरा' कहावत पूर्णतया चरितार्थ होती है। बार बार भुगतने पर भी हमें बुद्धि क्यों नहीं आती ! प्रेम और भ्रातृ भाव का उदय क्यों नहीं होता !

× × × ×

निर्धन होते हुए भी क्या हम विवाह शादी अनेक सामाजिक कार्यों और रीति भांति में, केवल दिखाने के लिए, अपनी हैसियत से कहीं अधिक ख़र्च नहीं कर डालते ? बीमारियों में हमारा भयंकर ह्रास हो रहा है, पर हमें अपने घर और गली मोहल्ले को साफ़ रखने से कौन रोकता है ? इस प्रकार हर एक गांव में काफ़ी सफ़ाई रहे तो क्या हमें शिकार बनाने वाली बीमारियां बहुत कुछ कम न हो जाय ? हमें बाल विवाह की कुरीति का पालन करने को कौन बाध्य करता है, जिससे हम अपने सुकुमारबालक बालिकाओं के क्षय का मार्ग प्रशस्त करते हैं !

× × × ×

दूसरे हमें सताते हैं, यह ठीक है; परन्तु हम में से जो ज़रा अधिक साधन-सम्पन्न होते हैं, उनका व्यवहार भी कहां अच्छा होता है ? वे अपने से छोटों पर हुकूमत चलाते हैं, कुछ लोगों को अछूत मानते हैं; वे उनके साथ उठने बैठने में मानों अपना अपमान समझते हैं । उनकी नज़रों के सामने उनका भाई सताया जाय तो उन्हें कुछ दया नहीं आती । ऐसी स्थिति में कृषक समाज अपने कष्टों की क्या शिकायत करे ! हमारे बन्धुओं में, परस्पर में एकता और संगठन हो, तो फिर किस की मजाल है, जो हमारी ओर आंख उठा कर देख सके ?

(तृतीय)

नया युग आ रहा है। यह युग मज़दूरों और किसानों का ही तो होगा। ये उठेंगे, और इनके साथ देश के देश उठेंगे। जो लोग अज्ञान में राजा महाराजाओं को अन्नदाता कहने लग गये हैं, उन्हें अपनी भूल मालूम होगी। वास्तव में सब को अन्न वस्त्रादि की सामग्री देने वाले किसान हैं। कवियों और लेखकों ने अब तक केवल महलों में रहने वालों और विलासिता का जीवन बिताने वालों का गुण गान करके भयंकर पाप किया है, उन्हें अब उसका प्रायश्चित करना होगा। अब महाकाव्यों, उपन्यासों और नाटकों के नायक किसान हुआ करेंगे। बालक बालिकाओं को—आने वाले नागरिकों को—अब ऐसी कहानियां नहीं सुनायी जाया करेंगी जिनका श्री-गणेश इस तरह होता है, 'एक राजा था, उसकी तीन रानियां थीं, तीनों के अलग अलग महल और बांदियां थीं।' अब राष्ट्रीय कवियों और सुलेखकों के प्रताप से बच्चों की कहानियों का आरम्भ यों होगा, "एक किसान था, वह बड़ा त्यागी और तपस्वी था। उसके तप के प्रभाव से देश के प्राणी जीवित रहते थे, सब उसकी पूजा प्रतिष्ठा करना अपना धर्म मानते थे।"

× × × ×

किसान ही धन धान्य पैदा करने वाले हैं। इनके ही

आसरे सरकार का अस्तित्व है। इनके ही कारण ज़मींदार ज़मींदार बने हुए हैं; इनके ही बल पर साहूकारों का साहूकारा चल रहा है। राज्य और समाज के चक्र की धुरी ये ही हैं। अपनी रक्षा के लिए, अपने स्वार्थ के लिए, उन्हें इनके प्रति उचित कर्तव्य पालन करना होगा, भलमनसाहत का वर्ताव करना होगा। अभी तक किसान दबते रहे थे, अत्याचार और अन्याय के आगे सिर झुकाते रहे थे। अब आगे ऐसा न होता रहेगा। परमात्मा की दी हुई भूमि पर किसानों का यथेष्ठ अधिकार होगा। प्रत्येक आदमी का अपने परिश्रम से उत्पन्न वस्तुओं पर अधिकार होना उचित है। पर जो चीज़ किसी के परिश्रम से पैदा नहीं हुई, जो प्रकृति-दत्त है उस पर किसी व्यक्ति विशेष का अधिकार होना कैसे न्यायानुकूल कहा जा सकता है? और यदि अधिकार हो, तो जिसे जितनी आवश्यकता है, जो जितनी का ठीक ठीक उपयोग करता है, उसे उतनी मिलनी चाहिये। भविष्य में, यह सिद्धान्त अन्यान्य बातों में, ज़मीन के सम्बन्ध में लागू होगा। फिर किसानों के कष्ट दूर होंगे, जन साधारण सुखी होंगे।

× × × ×

किसान संघ-शक्ति का महत्व, और त्याग तथा बलिदान की महिमा समझ रहे हैं। वे नित्य देखते हैं कि फ़सल पैदा होने के लिये, पहले बीज का नष्ट हो जाना ज़रूरी है। बस,

मनुषत्व की रक्षा के लिये, अपनी आने वाली सन्तान के लिये ये सब कष्ट सहेंगे। तब जनता इनका आदर सम्मान कैसे न करेगी? फिर सब इन्हें सुखी सम्पन्न क्यों न बनायेंगे? अहा! उस दशा में संसार यात्रा कितनी सुगम और सरल हो जायगी; यह सृष्टि कितनी सुन्दर और विश्व कैसा सुखमय हो जायगा! शुभम्।

(७)

दलित की वेदना

दुखे न मन जिससे दुखियों का, वैसा ही दो ज्ञान।
दुख का पर्दा हट जावे, वे होवें सुखी महान॥

—हिमांशु

(प्रथम)

अहा! उस दिन मेरे ऊपर कैसी आफ़त आयी, जाने किस कम्बख़्त का मुंह देखा था; सावधान रहते हुए भी भारी अनिष्ट हो गया। मेरा सीधा चलना लोगों को अखरता है, इस लिये मैं नीचे गर्दन झुकाये घर लौट रहा था। उसी समय एक पुजारी भी स्नान करके इधर आ रहा था।

वह ऊंची आवाज़ से कुछ गा रहा था। उसके शब्दों का भाव बड़ा मन-मोहक था। मेरा ध्यान पूर्णतः उसकी ओर आकर्षित हो गया। अन्यान्य बातों में वह कह रहा था:—

एक पिता के सब सन्तान।
कोई बड़ा न छोटा हम में, सब हैं एक समान।
सब का एक वही भगवान॥

× × × ×

संयोग से उसी समय, उसके पास होकर एक मोटर तेज़ी से निकली; और, वह उससे बचने के प्रयत्न में, मेरे ऊपर आ गिरा। उसने मुझे भी गिरा दिया। मेरे बहुत चोट लगी; सोचता था कि यह धर्मात्मा मुझ पर दया दर्शावेगा, पर, वह तो उलटा लात घूंसों से ही नहीं, अपने सोटे से मेरी ख़बर लेने लगा। उसने ठौर कुठौर कुछ नहीं देखा, जहां उसका मौक़ा लगा वहीं मुझे मारा। गालियां भी उसने बड़ी बेहूदी और नीचता की दीं। आख़िर, जब उसके हाथ और जिव्हा पूरी तरह थक गये, तब जाकर उसने मेरा पिंड छोड़ा। मैं जैसे तैसे उठा; घूर घूर कर उसे देखने लगा। मुझे बड़ा आश्चर्य था कि कोई कंठी जनेऊ वाला आदमी ऐसा निर्दयी और हिंसक कैसे हो सकता है।

× × × ×

इस से भी बढ़कर आश्चर्य की बात एक और हुई।

उस अवसर पर एक पादरी उधर से आ निकला। वह विधर्मी था। मुझे उससे किसी प्रकार की सहायता या सहानुभूति की कोई आशा नहीं थी। पर, उस बेचारे को तो मेरी दशा पर बड़ा ही तरस आया। यद्यपि उसे किसी ज़रूरी काम से कहीं जाना था, और इसलिये वह बहुत जल्दी में था, तथापि उसने मेरा पक्ष लेते हुए उस पुजारी को बहुत बुरा भला कहा। ऐसा मालूम होता था कि मेरे कष्ट से उसने हार्दिक वेदना का अनुभव किया है।

× × × ×

इस घटना को कई सप्ताह हो गये। मैं उसी दिन से बीमार पड़ा हूं; अच्छा होने में ही नहीं आता। मैं अच्छा होऊं भी कैसे? कोई दवा दारू नहीं। वैद्य हकीम सब फ़ीस के ग़रजी। मेरे पास तो देने को दवाई के भी पैसे नहीं। फिर कोई मुझे देखने क्यों आवे? और, कोई भला आदमी आ ही गया, तो करेगा क्या? उस दिन वह डाक्टर इधर से गया था; मेरी कराहट सुनकर उसका कुछ हृदय पसीजा। वह मेरे पास आने को हुआ। पर, पीछे, जाने उसे क्या याद सी आ गयी, उसने दूर खड़े रह कर ही मेरा समाचार पूछा। ख़ैर, भगवान भला करे, उस बेचारे का! उसने मेरी सुध तो ली। घर जाकर उसने कम्पाउन्डर के हाथ, कांच के गिलास में, दवाई भेजी। कम्पाउन्डर के हाव भाव देख कर मुझे अनु-

मान हुआ कि उसे यह बेगार बहुत बुरी मालूम हुई। उसने दूर खड़े होकर ही, जल्दी से, लम्बा हाथ करके, मुझे दवाई पिलानी चाही! वह थोड़ी सी तो मेरे मुंह में गयी, शेष सब फैल गयी। उस दिन के बाद उस कम्पाउन्डर ने फिर कभी सूरत न दिखायी।

× × × ×

हरे! दवा दारू की क्या बात कहूं! रोटी पानी भी भर पेट नसीब नहीं होता। जिन घरों से मैं पहले कमा कर लाता (मैला साफ़ करता) था, वहां अब बड़े लल्लू को भेज देता हूं। कभी कभी उनका नौकर जूठन के दो टुकड़े इसके पल्ले में डाल देता है। नहीं तो बहुधा यही होता है कि झुंड के झुंड कुत्तों और बन्दरों की दावत होती है, और यह बेचारा ख़ाली हाथ घर लौटता है। और हां, रोटी तो रोटी; इस लल्लू को मेरे लिये पानी लाने में भी बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। उस दिन अजान में यह लोटे में पानी भरवाने के लिए कुए की मेंड के सहारे खड़ा हो गया था; बस, इसी बात पर प्याऊ वाले ने इसकी ऐसी दुर्गति की, कि क्या कहूं।

× × × ×

गत सप्ताह की बात पर मुझे कितना आश्चर्य हो रहा है! पास वाले साहब के यहां दावत थी। उठते बैठते मैं धीरे धीरे वहां, जूठन उठाने के लोभ से, चला गया। देखता

हूं, निमन्त्रित सज्जनों में वह पुजारी जी भी थे। कहां तो वे इतने धर्मात्मा बने थे कि मेरे छू जाने से अपने आपको अपवित्र मानने लगे थे, और कहां अब खानसामा द्वारा लायी हुई डबल रोटी और सोडा वाटर आदि प्रसन्न-चित्त उड़ा रहे थे। बीच बीच में साहब का कुत्ता उनके पास आता, तो वे उसका भी तिरस्कार न करते थे। मेरे मन में तरह के विचार उठे; अन्ततः मैं धीरे धीरे गुनगुनाने लगा :—

एक पिता के सब सन्तान,
कोई बड़ा न छोटा हम में, सब हैं एक समान।
सब का एक वही भगवान॥

× × × ×

ओफ़! भगवान का दर्शन हमें कितना दुर्लभ है। मेरे बीमार पड़ने से पहले की बात है। मैं छोटे लल्लू को लिए बाज़ार में से जा रहा था। रास्ते में देवी के मन्दिर की तरफ़ देखकर लल्लू मचल पड़ा। उसने दर्शन करने के वास्ते, मन्दिर के भीतर जाने का कितना आग्रह किया। मैं बड़ी मुश्किल से उसे रोक पाया। मैं ने समझाया कि भाई हम 'अछूत' हैं, हमारा मन्दिर के भीतर जाना मना है। हम बाहर से दूर खड़े होकर ही झांक सकते हैं। कारण, दूसरे लोगों का—धर्माधिकारियों, और धर्माभिमानियों का—यह विचार है कि हमारे, मन्दिर के भीतर चले जाने से पतित

पावन भगवान स्वयं अपवित्र हो जाते हैं; फिर उनकी तथा मन्दिर की शुद्धि करनी पड़ती है। इन बातों का रहस्य लल्लू क्या समझे। पर उस समय मेरा विशेष उद्देश्य यही था कि किसी तरह उसे मन्दिर में घुसने से रोक लूं, जिससे उसे, और साथ ही मुझे भी धर्मात्मा लोगों का कोप-भाजन न बनना पड़े।

× × × ×

उस दिन पादरी साहब से भेंट हुई, तो उन्होंने कैसी चुभती हुई बातें कहीं। उन्होंने कहा था "देखो तुम्हारे धर्म वाले तुम्हारा कैसा तिरस्कार करते हैं। तुम्हें पशुओं से भी बुरा समझते हैं; फिर भी तुम उसी से चिपटे हुए हो। भले आदमी! तुम हमारे धर्म में आओ; फिर दुनियां तुम्हें आदमी समझेगी; हम ही लोग नहीं, स्वयं तुम्हारे धर्म की ऊंची ऊंची जातियों के आदमी भी तुम्हें सहर्ष अपने पास बैठावेंगे, तुम्हारा यथेष्ट आदर सत्कार करेंगे। हमारे धर्म का जादू अच्छे अच्छे मानते हैं। तुम्हारी जाति के भी कितने ही आदमी इस की शरण में आ गये हैं और आते जा रहे हैं। अरे! तुम्हें भी परमात्मा ने बुद्धि दी है। अपना भला बुरा सोच सकते हो। कहो क्या विचार है?"

× × × ×

मुझे कुछ जवाब न सूझा। आख़िर, मैं ने यही कहा कि

"साहब ! हमारी उम्र तो यों ही कट गयी; थोड़े बहुत दिन की बात और है; सब यों ही कट जांयगे ।" पादरी साहब ने मेरी ऐसी उदासीनता देख कर मुझ से कहा, कि तेरे घर में छोटे बड़े कितने व्यक्ति हैं । मैं ने जवाब दिया कि मेरे दो लड़के हैं । इस पर पादरी साहब ने कहा 'अरे मूर्ख ! अगर तू यही समझता है कि तू अब इस दुनियां में थोड़े ही दिन का मेहमान है तो कम से कम अपने बच्चों के भविष्य को तो सुधार । क्या तू चाहता है कि वे भी जन्म भर तेरी तरह समाज में घृणा के पात्र बने रहें ? पिता के नाते, तेरा यह कर्तव्य है कि तू उनकी उन्नति का मार्ग प्रशस्त कर । तू अपने वास्ते न सही, उनके ख़ातिर ही हमारे धर्म में प्रवेश कर ।" इन बातों का मेरे मन पर बहुत असर हुआ; यद्यपि मैंने पादरी साहब को कुछ निश्चयात्मक जवाब नहीं दिया, उनके कथन में मुझे बहुत कुछ तथ्य मालूम होने लगा । मेरे हृदय में अपने धर्म और जाति के प्रति विद्रोह के भाव उत्पन्न हो गये हैं ।

× × × ×

(द्वितीय)

अहा ! भारतवर्ष में अछूतों और दलितों की संख्या हज़ारों और लाखों ही नहीं, करोड़ों पर है । ये लोग अपनी वर्तमान

पतित अवस्था में भारतीय जनता का अत्यन्त निर्बल अंग हैं, और राष्ट्र-निर्माण तथा उन्नति में बाधक हैं। जब तक इनका यथेष्ठ उद्धार न हो, ये दूसरों से क्या सहयोग कर सकते हैं, तथा देश और समाज का क्या अभिमान कर सकते हैं! और, ऊंची कही जाने वाली जातियों के आदमी भी किसी विवेकवान तर्कशील पुरुष के सामने कैसे अपना मस्तक ऊंचा कर सकते हैं, जब तक वे इस अन्याय को होने देते हैं! दलितों के प्रति किया जाने वाला व्यवहार तर्क और युक्ति के सामने बिलकुल उचित नहीं ठहर सकता।

× × × ×

कोई इन ऊंची जाति वालों से पूछे कि वे दलितों के प्रति ऐसा घृणात्मक भाव क्यों रखते हैं, तो प्रायः वह कह देते हैं कि ये अपवित्र कार्य करते हैं। तो, क्या वह यह चाहते हैं कि ये इस कार्य को छोड़ दें? नहीं, ऐसा तो बहुत कम चाहते होंगे। फिर, विचारने की बात यह है कि घरों में माताओं को तथा दूसरों को भी तो समय समय पर अपवित्र कार्य करना पड़ता है। और, कोई आदमी अपवित्र कार्य करने की दशा में थोड़ी देर के लिये अपवित्र माना जा सकता है, परन्तु इससे वह जन्म भर के लिये और पीढ़ी दर पीढ़ी के लिये अपवित्र कैसे माना जा सकता है!

× × × ×

कुछ लोग यह कह देते हैं कि दलित आदमी मैले

कुचैले कपड़े पहनते हैं, इसलिये इन्हें पास कैसे बैठाया जा सकता है। परन्तु इसका उत्तरदायित्व किस पर है ? जब तक इन्हें आजकल की सी मामूली मज़दूरी मिलती रहेगी, तब तक ये साफ़ कपड़े कैसे पहन सकते हैं ? आवश्यकता है कि इनके कार्य की गन्दगी का लिहाज़ करके इन्हें खूब वेतन दिया जाय; साथ ही इन्हें सफ़ाई और तन्दुरुस्ती की बातों को जानने का भी अवसर मिले। फिर देखें; ये भी साफ़ रहते नज़र आने लगेंगे। परन्तु असल बात यह है कि मैलेपन के आक्षेप में कुछ सार नहीं है। ऊंची समझी जाने वाली जातियों के भी तो अनेक आदमी मैले कुचैले कपड़े पहने रहते हैं, उनसे छूने तथा उनके हाथ का खाना खाने आदि में कोई परहेज़ नहीं किया जाता। वैश्य या ब्राह्मण समझ कर, हलवाइयों और रसोइयों के कपड़ों पर कोई ध्यान नहीं देता। सफ़ाई के विषय में वे चाहे जैसे उदासीन रहें, समाज में उनके प्रति अच्छा ही भाव बना रहता है। अस्तु, आवश्यकता है, कि इन विषयों पर गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाय, और प्राचीन रूढ़ियों और प्रथाओं में उचित सुधार हो।

× × × ×

अन्य देशों में यद्यपि भारतवर्ष की तरह जाति-भेद नहीं है। पर वहां भी दलितों की संख्या और अवस्था काफ़ी

चिन्तनीय है। बहुत से गौर वर्ण आदमी यह समझते हैं कि उनके रंग वालों को छोड़ कर और सब मानव जनता असभ्य अथवा अर्द्ध-सभ्य हैं। रंगीन जातियों के—काले पीले आदि—आदमी, चाहे जितना लिख पढ़लें, चाहे ईसाई धर्माव-लम्बी भी बन जांय, और चाहे योरपियन ढंग का रहन सहन और भेष भूषा आदि भी रखें, उनकी दृष्टि में नीच और लगभग अछूत ही जचते हैं। वे गौर वर्ण यह भूल जाते हैं कि रंग तो वाह्य परिस्थिति, निवास स्थान की जल वायु आदि के कारण होता है। किसी ख़ास रंग वाले सब आदमियों को गुण स्वभाव में ओछा मान लेना मूर्खता है।

× × × ×

कुछ आदमी जाति या वर्ण - भेद का विशेष विचार नहीं करते। परन्तु अफ़सोस! वे प्रायः एक और प्रकार का भेद मानते हैं। उनकी दृष्टि में निर्धन होना महा पाप है। वे धनवानों से ही मेल जोल तथा सामाजिक सम्बन्ध रखना चाहते हैं। उनके क्षेत्र में ग़रीबों की कोई प्रतिष्ठा नहीं। इस प्रकार धन-वानों और निर्धनों में एक विभाजक दीवार खड़ी हो जाती है, जो धर्म या जाति भेद से कम हानिकर नहीं होती, विशेषतया इस ज़माने में, जब कि समाज में धन का वितरण बहुत ही असमान रूप से हो रहा है।

× × × ×

जो देश या समाज अपने आदमियों की, उपेक्षा और तिरस्कार करते हैं, वे नहीं जानते कि वे स्वयं अपने ऊपर कितना अत्याचार करते हैं; इन कृत्रिम भेद भावों से, अपनी कितनी हानि करते हैं। दलितों में अनेक रत्न और हीरे होते हैं। अनुकूल परस्थिति न मिलने से वे चमकने नहीं पाते, उनका विकास नहीं होता, उनसे सर्व साधारण को यथेष्ठ लाभ नहीं पहुंचता। यदि उन्हें राज्य तथा समाज की ओर से, अपनी योग्यता बढ़ाने का पर्याप्त अवसर तथा सुविधायें मिलें, तो प्रत्येक देश में प्रतिभावान और यशस्वी महानुभावों की संख्या में कितनी वृद्धि हो जाय।

× × × ×

(तृतीय)

जागृति हो रही है। भारतवर्ष में उपदेशक और लेखक सर्व साधारण को यह याद दिला रहे हैं कि श्री रामचन्द्रजी ने भीलनी के बेर बड़े प्रेम से खाये थे; और, निषाद को भाई की तरह गले लगाया था। मल्लाह की लड़की से उत्पन्न व्यासजी हमारे महाभारत आदि धर्म-ग्रन्थों के निर्म्माता हैं। कबीर, जुलाहा होकर भी, आदरणीय भक्त प्रसिद्ध हैं। वाल्मीकि ने, निम्न कुल में पालित पोषित होने पर भी, ऋषि पद प्राप्त किया था। सुधारक, जनता को यह समझा रहे हैं,

कि वास्तव में छोटा काम वह है जिससे सत्यता और धर्म का ह्रास हो। सेवा करने से कोई छोटा नहीं होता। नीच कहे और समझे जाने वाले व्यक्ति अपने अपने शुभ कर्मों के कारण अपने सेवा भाव से बड़ों के आदर-पात्र ही नहीं, स्वयं बड़े बन सकते हैं। अब अछूतों और दलितों को चाहिये कि सफ़ाई और तनदुरुस्ती का ख्याल रखें; बाधाओं के होते हुए भी शिक्षा और योग्यता प्राप्त करें। देशोन्नति के लिये त्याग और बलिदान करने में ऊंची कही जाने वाली जातियों से मुक़ाबला करें; फिर, उनका उद्धार स्वयं हो जायगा।

× × × ×

संसार के अन्य देशों में भी समाज का व्यवहार, अपने दलित अंगों के प्रति अधिक दया और उदारता का होता जा रहा है। यद्यपि कुछ स्वार्थी और अन्ध विश्वासी अपने पुराने विचार छोड़ने में असमर्थ मालूम होते हैं, पर ज़माना क्रमशः बदलता जा रहा है। अफ्रीका और अमरीका के हबशी उन्नति का अवसर मिलने पर कितने सुयोग्य और सभ्य हो सकते हैं, इसका विचार करके अनेक गौर-वर्ण सज्जन अपनी समाज की वर्ण-भेद सम्बन्धी भूल स्वीकार करने लग गये हैं, वे औरों का भी भ्रम निवारण करने में जुट गये हैं। परम पिता की कृपा से भूले भटके क्रमशः राह पर आ रहे हैं। हां, जितना इस कार्य के लिये परिश्रम और त्याग अधिक होगा उतना ही जल्दी सफलता प्राप्त होगी। शुभम्।

(८)

क़ैदी की वेदना

" हम अपराध रूपी वृक्ष की टहनियों को काटते हैं, पर उसकी जड़ काटने की तरफ़ ध्यान नहीं देते। अपराध विज्ञान का उद्देश्य यह होता है कि वह अपराधी को सच्चा सभ्य मनुष्य बनावे।"

—रमाशंकर मिश्र

(प्रथम)

अब मेरी क़ैद के दो दिन और रहे हैं, और हां, मेरी इस दुख भरी ज़िन्दगी के भी तो दो ही दिन बाक़ी हैं, कल का और परसों का। फिर, मैं प्राण-दंड पाकर इससे सदा के लिये

छुट्टी पा जाऊंगा। आज मुझे अपने जीवन की पिछली घटनायें याद आरही हैं।

× × × ×

कई वर्ष पहले की बात है। शाम को खाना खाने के बाद मैं अपने साथियों में बैठा करता था। उनमें से कई इधर उधर आवारा घूमा करते थे। वे तरह तरह की कहानियां और इधर उधर की बातें सुनाया करते थे। कभी कभी चोरों और डाकुओं की भी बात चलती, और उनके साहस और वीरता की प्रशंसा होती थी। यद्यपि मैं चोरी और डाके की निन्दा करता, पर अपने साथियों के बात चीत के ढंग से मैं मन ही मन उनकी बहादुरी की प्रशंसा किये बिना न रहता।

× × × ×

एक दिन मुझे दिन भर खाने को नहीं मिला था। भूख सता रही थी। ऊपर से रात आरही थी। मैं शरीर के तक़ाज़े से विवश था। मेरी नज़र एक दुकान पर पड़ी। उसका दरवाज़ा खुला हुआ था, और वहां कोई आदमी था नहीं। मैं ने वहां से ही अपना पेट भरने की सोची। भीतर से आवाज़ आयी, 'ख़बरदार क्या करता है। दूसरे की वस्तु लेना पाप है।' मैं ने अपने अन्तःकरण का समाधान कर दिया, "ज़्यादह नहीं लूंगा, इस वक्त के पेट भरने लायक़, केवल पावभर के अन्दाज़ भुने चने लूंगा, और यह पीछे अपनी मज़दूरी के पैसों से चुका दूंगा।" अन्ततः दुकान पर से थोड़े से चने लेलिये।

पर ज्योंही मैं वहां से चलने को हुआ, दुकानदार भीतर से निकल आया। उसने 'चोर, बदमाश' आदि कहते हुए मुझे मारना शुरू कर दिया। आस पास के कई आदमी औरतें और बालक इकट्ठे होगये। सब ने दुकानदार के कार्य का समर्थन किया, किसी ने मेरी बात न सुनी। और, जिसने सुनी भी, तो मेरी घृणा पूर्वक हंसी उड़ायी। कुछ दर्शकों ने यह कहते हुए कि आज यहां चोरी की है, कल दूसरी जगह करेगा, मुझे पीटना शुरू कर दिया। चारों तरफ़ से मुझ पर मार पड़ने लगी, तो मैं झुंझला उठा। मैं ने भी एक दो पर हाथ चला दिया। यह देखकर तो वे सब चिल्ला उठे, 'यह बड़ा दुष्ट है, इसे पुलिस के हवाले करना चाहिये।' इस प्रकार मैं वहां से पुलिस में, और पुलिस से अदालत में लाया गया। मेजिस्ट्रेट ने मेरी परिस्थिति का कुछ विचार न कर, क़ानून की मांग पूरी की, मुझे चोरी और मार पीट के अपराध में कठिन कारावास देदिया।

× × × ×

मैं क्या से क्या होगया। सब मुझे चोर और क़ैदी कहने लगे। क्या मैं चोर हूं! इस प्रश्न पर मैं बार बार सोचता था। मैंने उस दुकानदार का पावभर अन्न लिया था, वह मैं दो एक दिन में मज़दूरी करके चुका देता। या, वह दुकानदार ही सन्तोष कर लेता। पशु पक्षियों के लिए, हट्टे कट्टे भिखारियों के लिए, हर रोज़ कितना ही ख़र्च होजाया करता है; कोई

बात भी नहीं उठाता। पावभर अन्न के ख़ातिर सब लोग मुझे ज़बरदस्ती 'चोर, चोर' कह रहे हैं, और एक प्रकार से मुझे वाध्य कर रहे हैं कि मैं अपने आपको चोर समझूं ; अर्थात् मैं चोर बन जाऊं।

× × × ×

क्या उस दुकानदार ने कभी पावभर अन्न की भी चालाकी न की होगी ? क्या मुझे गिरफ्तार करनेवाले पुलिस के सिपाही ने कभी पावभर अन्न के बराबर भी 'रिश्वत' न ली होगी ? क्या मेरे विषय में न्याय करनेवाले मैजिस्ट्रेट ने कभी पावभर अन्न के बराबर भी डाली आदि की भेंट न ली होगी ? जिस जेलर ने मुझे अपनी अधीनता में ग्रहण किया है, क्या वह अपनी छाती पर हाथ रखकर कह सकता है कि उसने उस समय तक कुल मिलाकर जितनी 'ऊपर की आमदनी' पायी है, वह पावभर अन्न के सौ पचास गुना भी न होगी ? फिर ये सब क़ैदी क्यों नहीं ? और, मैं ही क़ैदी क्यों ? आह ! दुनिया में उन लोगों की गिनती सभ्य पुरुषों में है, उनकी 'चोरी' को सुन्दर नाम दिये गये हैं। चालाकी, इनाम, रिश्वत, डाली, या ऊपर की आमदनी, इन शब्दों का क्या अर्थ है ? क्या ये सब चोरी के पर्यायवाची नहीं हैं ? हां, मालूम हूआ, कि गंवारू ढंग से की जाने पर जो क्रिया 'चोरी' कही जाती है, सभ्यता-पूर्वक सम्पादित होने पर वही सुन्दर शब्दों से सम्मानित होती है।

हरे ! मुझ पर मार पीट का भी इलज़ाम लगाया गया था। क्या मैं ने किसी को सताने के लिये हाथ चलाया था ? जब सब मुझे मारने लगे तो मैं कब तक सहन करता ? अपनी थोड़ी बहुत रक्षा करना मैं ने आवश्यक समझा। एक दो हाथ चलाये थे, किसी को चोट भी नहीं लगी थी। पर, वहां तो हल्ला मचगया ! उनकी दृष्टि में मैं मारपीट करनेवाला होगया।

× × × ×

मैं जेल में दाखिल हुआ; वहां तो दूसरी ही दुनिया नज़र आयी। पहले तरह तरह के भेष वाले आदमी मिला करते थे; परमात्मा की सृष्टि की विभिन्नता के दृश्य दिखायी देते थे। पर जेल में तो मानों एक ही सांचे में ढले हुए आदमी एकत्रित थे। सब के वस्त्रों का रंग रूप और काट छांट उसी तरह की थी। सब घुटने तक पायजामा पहने थे। हर एक के बदन पर एक थोड़े घेर वाला कुर्ता, और सिर पर दुपल्ली टोपी थी। सब कपड़े मोटे सफ़ेद वस्त्र के थे। हर एक क़ैदी के गलेमें एक तख्ती पड़ी हुई थी, उस पर उसके नाम-रूप एक संख्या खुदी थी। वहां कुछ तख्तियां हर समय, नये कैदियों का नामकरण संस्कार करने के लिये तैयार रखी थीं। जेल के परिवार में शामिल होने के समय से मेरे पुराने नाम को छुट्टी देदी गयी। अब से मेरा नाम "नम्बर २०३" होगया। मैं अपने नये बन्धुओं के साथ रहने लगा। घंटी बजने पर उनके

साथ बिस्तरे पर से उठता, उनके साथ शौच आदि से निवृत्त होता और फिर काम पर लग जाता। दो पहर को घंटे भर की छुट्टी होती, तब सब भोजन करते। सब के लिये मोटे घटिया, और मिट्टी कंकर मिले आटे की रोटियां, पतली दाल, और कुछ कच्ची पक्की शाक भाजी होती थी।

× × × ×

पहले, जब मैं जेल से बाहर था, मुझे तरह तरह के विचार वाले आदमी मिला करते थे। कभी कभी साधु महात्माओं से भी भेंट होजाती थी। कभी कभी मैं मंदिर में देव दर्शन करने और कथा सुनने भी चला जाया करता था। परन्तु जेल में आने के बाद तो मैं यंत्र की भांति चलने लगा। रोज़ वही दिनचर्या, चोर, लुटेरों और बदमाशों की संगति, उनकी ही कथा वार्तायें, और, सबसे बढ़कर मुझे चोर समझा जाना। धीरे धीरे इन बातों का मुझे अभ्यास होगया। मेरे लिये यह नया जीवन ही स्वाभाविक बन गया; यहां तक कि जब मेरे छोड़े जाने का समय आया, तो मुझे अपनी जेल की बारक और संगी साथियों से विदा होने पर कुछ प्रसन्नता न हुई; मैं कुछ बेमना सा रहा।

× × × ×

मैं क़ैद से छूट कर आया। अब मैं जहां कहीं जाता मालिक और मज़दूर सब मुझ से बचते, दूर दूर रहते, मानों

मैं अस्पृश्य होगया था। मुझे मेहनत मज़दूरी मिलना कठिन होगया। भूख प्यास अधिकाधिक सताने लगी। चहुं ओर आदमी मुझ से घृणा करते। मैं भी संसार से घृणा करने लग गया। अपने प्राणों से मुझे कुछ ममता थी, पर, भूख प्यास के कारण उन्होंने मेरा मोह कम कर दिया था, फिर मैं ही उन से क्यों प्रेम करूं, और प्रेम तो दोनों तरफ़ से ही, तभी सार्थक होता है। मैं आत्म-हत्या करने की सोचने लगा।

× × × ×

मेरी भोजन वस्त्र की समस्या हल नहीं हो रही थी। मन में बेढ़ब उथल-पुथल मची हुई थी। इस अवसर पर मेरा एक जेल का मित्र आया। हम दोनों की जी खोल कर बात चीत हुई। उसने मेरे आत्म-हत्या के विचार की बहुत निन्दा की; और, यह ठहरा कि दोनों मिलकर अब की बार किसी अच्छे धनवान के यहां घुसें। अगर अच्छी मात्रा हाथ लग गयी तो उजले कपड़े पहन कर हम सभ्य आदमियों में बैठने उठने लगेंगे। लोग हमारी पिछली बातों को भूल जांयगे, और हम संसार में असभ्य न समझे जाने वाले उपायों से-- सट्टे, फाटके, जुए, या दलाली से— अधिकाधिक धनवान बनते जांयगे। और, कुछ देर के लिये मान लो, हम पकड़े ही गये तो क्या चिन्ता है; जेल का जीवन जाना-पहचाना है।

× × × ×

पहर रात रहे हमने एक प्रसिद्ध धनी के यहां नक़ब लगाया जो कुछ वहां से लेना चाहते थे, सब संग्रह कर लिया। परन्तु जब हम उसे उठा कर चलने लगे, तो वहां जागरण हो गया, मेरा साथी तो झट खिसक गया। पहरे वाला सिपाही मुझ पर गोली चलाने की तैयारी करने लगा। यह देखकर मैंने फुर्ती से उस पर अपनी कुदाल का वार किया; वह उसके सिर में लगी। इससे वह वहीं ठंडा हो गया। मेरी इच्छा उसे जान से मार डालने की नहीं थी। मैं तो अपनी रक्षा करने के लिये, उसे केवल बन्दूक़ चलाने में विफल-मनोर्थ कर देना चाहता था। वह मर गया, इसका मुझे कुछ दुख हुए बिना न रहा।

× × × ×

पर, मुझे इस बात का विचार करने का विशेष अवसर ही न था। कारण, इस बीच में उस घर के दो तीन और आदमी मेरी तरफ़ आते दिखायी पड़े। अब मैं वहां से अपने प्राण लेकर भागा। मैं किसी की पकड़ में न आया, पर मेरा मूल मतलब हल न हुआ। सब धन तो वहीं रह गया। इसके अतिरिक्त, यद्यपि वे लोग मेरा नाम गांव आदि न जान सके, पर उन्होंने मुझे पहचान तो लिया ही। वे समझ गये कि मैं वही आदमी हूं जो कुछ दिन पहले जेल से छूट कर आया था। पुलिस में मेरी 'रपट' लिखा दी गयी। मेरी गिरफ्तारी के

वास्ते इनाम की घोषणा प्रकाशित हो गयी। जगह जगह मेरी खोज करने वाले फिरने लगे।

× × × ×

अब मैं जहां तहां अपने आपको छुपाते हुए फिरने लगा। परन्तु, रोटी पानी का प्रवन्ध भी तो करना था। कब तक अज्ञात-वास करता। आख़िर पकड़ा गया। अब की बार मुझ पर भीषण चोरी ही नहीं, हत्या का भी अपराध लगाया गया। मैं ने सुना था कि अदालतों में मुक़द्दमे बड़ी बड़ी मुद्दत तक चलते रहते हैं। अनेक गवाहों के बयान होते हैं। क़ानून जानने वालों—वकीलों और बैरिस्टरों—की लम्बी बहस होती है, खूब जिरह होती है। फिर भी फ़ैसला अपने पक्ष में न हो तो उसकी अपील, तथा आवश्यक होने पर, अपील की भी अपील होती है। पर ये सब बड़े आदमियों की, पैसे वालों की बातें हैं। मेरे मुक़द्दमे का फैसला, हां अन्तिम फ़ैसला, झट-पट हो गया। कुछ देर न लगी। आह ! मेरे लिये फांसी का दंड निश्चित हो चुका है। अब केवल दो दिन की ज़िन्दगी और बाक़ी है, फिर संसार का क़ानून मुझे इस दुनियां से निर्वासित कर समाज को मुझ से सुरक्षित कर देगा; और, मैं भी इस परिस्थिति से मुक्त हो जाऊंगा, जिसने मुझे एक भलेमानस से क़ैदी बनाया, और, पीछे हत्यारा सिद्ध किया।

× × × ×

(द्वितीय)

हमारे देश में, तथा अन्य देशों में जो इतने आदमी चोरी आदि के अपराध में बन्दी हैं, इनमें से बहुत से मेरी ही तरह कभी अच्छे भलेमानस होंगे। उन्होंने मेरी तरह कोई छोटी मोटी भूल की होगी। उनका सुधार न कर, वे कैदी बनाये गये होंगे। हां सम्भव है, अब वे चोर उचक्के हो गये हों। आह! कितने आदमी ठोक पीट कर कुमार्ग-गामी बनाये जाते हैं। अन्य कारखानों में लोहे आदि की मशीनों के द्वारा जड़ पदार्थों की उपयोगिता बढ़ायी जाती है और नयी नयी चीज़ें तैयार की जाती हैं, तो जेल नामक कारख़ानों में अपराधियों को अधिक अपराधी बनाने का काम होता है। जिन लोगों से समाज के दूषित वातावरण के कारण कुछ अपराध हो जाता है, वे जेलों के क्षेत्र में अपनी तथा दूसरों की मनोवृत्ति बिगाड़ने में बढ़िया यंत्र का काम देते हैं।

× × × ×

आज कल नीति और नियम कैसे प्रेम-हीन हैं। जिस प्रकार कुछ मास्टरों के पास विद्यार्थियों के विविध दोष दूर करने की रामबाण औषध बेंत या छड़ी होती है, उसी प्रकार नागरिकों को सुधारने के वास्ते राज्यों का अमोघ अस्त्र प्रायः जेल, कालापानी या फांसी है। न्यायाधीश यह कब सोचते हैं कि

नागरिकों के उस वातावरण और परिस्थिति में सम्यग् संशोधन किया जाय, जिसके कारण नागरिक विविध अपराध करने के लिए वाध्य हो जाते हैं। वे तो क़ानून की किताव खोल कर बैठ जाते हैं, और उनकी विविध धाराओं या दफ़ाओं की, अपराधों से विध मिलाने लगते हैं। वे साधारण अपराधियों को तो भिन्न भिन्न मात्रा की क़ैद की सज़ा देते हैं, विशेष दशाओं के लिए उनके पास कालेपानी या प्राण-दण्ड का अस्त्र है।

× × × ×

प्रायः मनुष्यों को अपराध करने में कोई आनन्द नहीं आता। वे अपनी शारीरिक आवश्यकताओं या मानसिक विकारों के कारण ही कोई अपराध करते हैं। बहुत से आदमी भोजन वस्त्रादि के अभाव के कारण, व्याकुल रहने से धन धान्य की चोरी करने को विवश होते हैं; वे सोचते हैं कि यदि पकड़े ही गये तो जेल में हमारे खाने पीने की व्यवस्था तो हो ही जायगी। ऐसे आदमी क़ैद की सज़ा सुनकर अपने मन में बहुत दुखी नहीं होते। जो आदमी क्रोध उत्तेजना या ईर्षा आदि के कारण कुछ अपराध करके सज़ा पाते हैं; उनके मन से प्रायश्चित की भावना प्रायः जाती रहती है। सम्भव था, यदि वे अच्छे वातावरण में रहते तो ठंडे दिल से सोचने पर वे कभी अपनी त्रुटियों और दुष्कृत्यों की स्वयं

निन्दा करते, और अपने भावी जीवन को सुधारते, पर जेल या कालापानी तो ऐसी सम्भावना को प्रायः मिटा ही देता है। और, फांसी के दंड से तो अपराध करने की मनोवृत्ति के साथ, स्वयं अपराधी का ही अन्त हो जाता है।

× × × ×

(तृतीय)

जो आदमी जेलों में बन्द करके रखे जाते हैं, क्या उनसे नागरिक जीवन के लिये अधिक उपयोगी काम नहीं लिया जा सकता ? जेलों में बने हुए सामान से, किसी किसी देश की सरकार को यदि वर्ष में पांच दस हज़ार रुपये की आमदनी होती है तो क़ैदियों के भोजन आदि में उसे लाखों रुपया ख़र्च करना पड़ता है। फिर भी अपराधियों की संख्या घटने में नहीं आती। और, साधारणतः अपराधियों को घटाने का यह उपाय ठीक ही नहीं है कि उन्हें समाज से अलग कर जेलों के अपवित्र वातावरण में बन्द रखा जाय। रोटी कपड़े पा सकने वाले आदमी चोरी आदि नहीं करते। अच्छी संगति में रहने वालों को ख्वामख्वाह शरारत करने की नहीं सूझती।

× × × ×

इतिहास-प्रसिद्ध घटना है। पहले इंगलैंड के अपराधी आस्ट्रेलिया भेजे जाया करते थे। वहां उन्हें स्वतंत्र रहकर

खेती बाड़ी करने या पशु चराने आदि का अवसर मिला। उनके भर पेट खाने पहनने की व्यवस्था हो गई। उनकी मनोवृत्ति सुधर गयी। वे सुयोग्य नागरिक बन गये। अब उनका उपनिवेश धनी, उन्नत और स्वराज्य-भोगी है। ऐसे उदाहरणों पर विचार करने से नयी सच्चाई का ज्ञान होगा। इंगलैंड के 'होम-सेक्रेटरी' ने पिछले दिनों सूचना दी थी कि "इस शताब्दी के आरम्भ में वहां जितने जेलों की आवश्यकता थी, अब उनके आधे ही काम आ रहे हैं। शेष के मकानों का अन्य सार्वजनिक हित के कार्यों के लिये उपयोग हो रहा है। जेलों की संख्या घट जाने से जिन कर्मचारियों की इस विभाग में आवश्यकता नहीं रही है, उनके वास्ते अन्य सरकारी विभागों में व्यवस्था कर दी गयी है।" यह है, लोगों की आर्थिक स्थिति सुधरने, और अच्छी संगत मिलने का फल !

× × × ×

आज कल वैज्ञानिक उन्नति के कारण, अनेक रद्दी से रद्दी, सड़ी गली और बदबूदार चीज़ों का अच्छा उपयोग किया जाने लगा है। क्या फांसी का दंड पाने वाले व्यक्ति ऐसे निरर्थक हैं कि वे बलात् इस संसार से सदा के लिए बिदा कर दिये जांय? क़ानून में ज़िन्दा आदमियों के मारने की शक्ति क्यों है, जब कि वह किसी मरे हुए को जीवन प्रदान करने में

असमर्थ है ! विज्ञान-वेत्ता जड़ पदार्थों की उपयोगिता बढ़ाने की जितनी चिन्ता करते हैं, उसका शतांश भी मनुष्य जैसी चेतन शक्ति को अधिक उपयोगी बनाने के लिए नहीं करते !

× × × ×

हर्ष की बात है कि इन बातों पर अधिकाधिक विचार होने लगा है। संसार के कितने ही देशों में—अमरीका की कई रियासतों, और योरप के कई राष्ट्रों में—प्राण दंड बिलकुल उठ चुका है, और, प्रायः उनमें इसके उठाये जाने से कोई हानि नहीं हुई है; रहा लाभ, यह तो प्रत्यक्ष ही है कि इतने नागरिकों की जान बची और उन्हें, स्वदेश एवं मानव जनता के लिये यथा शक्ति सेवा करने का अवसर मिला। ऐसे अनुभव से आशान्वित होकर इंगलैंड आदि कुछ देशों में प्राण-दंड अस्थायी रूप से उठाने के प्रयोग किये जा रहे हैं।

× × × ×

यद्यपि भिन्न भिन्न देशों के राष्ट्र-सूत्रधारों को अभी इस दिशा में बहुत कुछ कार्य करना शेष है, भविष्य उज्वल मालूम होता है। परमात्मा चाहेगा तो शीघ्र ही सब जगह इस सन्देश पर ध्यान दिया जायगा—"जेल, कालापानी और फांसी अब इस युग की सभ्यता के लिये अनावश्यक, और अहितकर हैं; इन्हें क़ानून की पुस्तक से सदा सर्वदा के लिये उठादो। उस

परिस्थिति में सम्यग् सुधार करो, जिसके कारण किसी को चोरी या हत्या आदि करने की प्रेरणा होती है। यदि संयोग से कहीं कुछ व्यक्ति ऐसे हों जिनकी मनोवृत्ति अपराध करने की होगयी हो तो मनोविज्ञान के विकसित सिद्धान्तों के अनुसार उनकी चिकित्सा की व्यवस्था होनी चाहिये।"

(१)

निर्वासित की वेदना

सैकड़ों कराल क्रूर यातनायें भोग रहे,
सैकड़ों समोद यातनायें अपनावेंगे।
वारेंगे सर्वस्व 'प्रेम' देश बलि वेदी पर,
शीघ्र बलिदान के नवीन युग लावेंगे॥

—ठा० परम सिंह 'प्रेम'

(प्रथम)

दस वर्ष हुए, यही महीना था, दिन था शनिवार का। मुझे घर से बाहर बुलाकर गिरफ्तार किया गया था। मुझे इतनी भी इजाज़त नहीं मिली थी कि मैं अपनी सहधर्मणी

और मित्रों से आवश्यक वार्तालाप कर लेता, या बच्चों को अच्छी तरह पुचकार लेता। तथापि मेरे लिए आयी हुई मोटर की, और पुलिस अधिकारियों की गन्ध पाकर बहुत से पुरुष और महिलायें एकत्र होगये थे। अनेक सज्जनों ने अपने गाढ़ प्रेम का परिचय दिया, कुछ ने आलिंगन किया, कुछ ने मेरे मना करते करते भी अपने कर-कमलों से मेरे चरण स्पर्श करके मुझे कृतार्थ किया, कई महाशय अपने भिन्न भिन्न प्रकार के भावों को यथा शक्ति छिपाते हुए दूर खड़े ही मुझे प्रेम-दृष्टि से देखते रहे; कुछ बेतहाशा अपने उद्गार प्रकट कर रहे थे, तो दूसरे मौनावलम्बन में भी महान थे। यह सब दृश्य तनिक सी देर का था, परन्तु था यथेष्ठ हृदय-ग्राही।

× × × ×

मोटर द्वारा मैं हवालात में लाया गया। तीसरे दिन अदालत में पेश हुआ। पर, पुलिस के पास मेरे विरुद्ध काफ़ी प्रमाण न होने के कारण, उसने मजिस्ट्रेट से पन्द्रह दिन की मोहलत ली। इस अवधि के समाप्त होने पर पुलिस ने दस दिन की मोहलत और लेली। इस बार मेजिस्ट्रेट ने मेरे मुक़द्दमे के सम्बन्ध में कुछ कार्रवाई करके उसे सैशन जज के यहां भेज दिया। वहां भी कुछ पेशियां हुईं।

इस बीच में मैं बराबर जेल के अन्दर हवालात में रहता रहा।

× × × ×

जेल को कोई कृष्ण-मन्दिर कहता है, कोई स्वराज्य भवन, कोई बड़ा घर, और कोई शाही सराय। जैसी जिसकी भावना होती है, वैसा ही उसे यह प्रतीत होता है। मेरे लिये यह एक तपोभूमि थी। अस्तु, लगभग दो मास हवालात में रह चुकने पर मुझे काले पानी का दंड सुनाया गया। मोटर द्वारा फुर्ती से मैं स्टेशन पर लाया गया। स्पेशल ट्रेन खड़ी थी। ज्यों ही मैं उसमें बैठा, वह चलती हुई। दिन और रात में बहुत ही कम, और प्रायः गुमनाम जगहों में, ठहर कर रेल ने मुझे बन्दरगाह वाले स्टेशन पर जा उतारा। वहां फिर मोटर की सवारी। उसके बाद जहाज़ पर चढ़ना, और कई दिन रात समुद्र ही समुद्र का दृश्य। निदान पूरे पन्द्रह दिन की यात्रा कराके मुझे इस नगर में ला छोड़ा गया।

× × × ×

आह ! पहले दिन कैसी व्याकुलता थी। साधारणतया आदमी यह मानते हैं कि एक दिन रात के कुल चौबीस घंटे होते हैं, और एक घंटे के चौबीस मिनट। पर उस दिन तो एक एक मिनट मेरे लिये पहर सा था। मुझे आशा नहीं थी, कि उस संकट में मैं दिन भर ज़िन्दा रह सकूंगा। हर

घड़ी मुझे प्राण निकलते से मालूम दिये। मैंने कहा, 'परमात्मा! तू मेरे प्राण जल्दी लेले, मैं जीवित क्यों हूं, मेरे जीवन से मुझे क्या लाभ होगा, तथा और ही किसी का क्या भला होगा !

× × × ×

मैं हर समय उदास रहता था। मैं बार बार सोचता था कि सूर्य, चन्द्रमा, आकाश और तारे यहां भी हैं, पर मुझे अपनी जन्म-भूमि में ये कुछ और ही तरह के लगा करते थे; यहां तो येअपरिचित से हैं। यहां रहने को विशाल भवन है, पर यह मेरी उस झोंपड़ी की तुलना थोड़ ही कर सकता है। पुरुष स्त्री यहां भी हैं, पर इनकी भाषा, भेष और हृदय ही दूसरा है ! बाल बच्चों को देख कर मुझे अपने सुकमारों की याद आजाती है। वे क्या कहते होंगे, क्या करते होंगे, अब तो वे बड़े हो गये होंगे। पहले मैं जब कभी सभा सोसायटी में, या लेखकों और सम्पादकों से मिलने जाता तो उनकी मां उन्हें जैसे तैसे बहला कर रखा करती थी। और, जब मैं गांवों में प्रचारार्थ चला जाता था, और कई कई दिन लग जाते थे तो उस बेचारी को उन्हें दिलासा देने में बड़ा कष्ट होता था। वह अपने दुख को तो भूले हुए ही रहती। वह देवी समझ गयी थी कि ये देश सेवा के लिए जुटे हुए हैं, मैं इनकी विशेष सहायता नहीं कर सकती, तो बाधा तो उपस्थित न करूं। अमीर घर की लड़की थी, पर, मेरे घर रूखी सूखी खाकर भी प्रसन्न-चित रही। उसकी बात व्यवहार से, उसके

निकट सम्बन्धी भी यह न जान सके कि उसे किसी चीज़ का अभाव है। आह ! उस बेचारी की अब क्या दशा होगी। मेरे जैसे के घर वालों को दो वक्त रोटी और कुछ मोटा झोटा कपड़ा मिल जाय, यही क्या कम है ! जमा पूंजी कहां से आये! और आये भी तो क्या उसे खर्च करने के काम थोड़े हैं ! जहां इतने आदमी पद-दलित, पीड़ित, और भूख प्यास से व्याकुल रहते हों, वहां कोई सहृदय अपने पास पूंजी रख ही कैसे सकता है। हां, उस बेचारी की क्या दशा होगी ! शायद उसके सगे सम्बन्धी कुछ दे देते हों। पर मुसीवत के दिनों में कौन किसी का होता है। फिर मेरी पत्नी तो स्वाभिमान की साक्षात मूर्ति है, वह अपने लिए किसी का अहसान क्यों सहेगी !

× × × ×

मुझे यहां आये छः महीने हुए थे। मेरे नगर का एक दूसरा आदमी, काले पानी का दंड पाकर यहां आया। उस से मुझे अपने उस मित्र का समाचार ज्ञात हुआ। वह बेचारा मेरी तरह ग़रीब, परन्तु बड़ा सहृदय है। उसका मेरे प्रति, तथा मेरे बाल बच्चों के प्रति असीम अनुराग है। मुझे यहां ले आये जाने पर, उसने मेरे विषय में उस संस्था के अधिकारियों से कहा था, 'देखो ! बाबू जी ने तुम्हारे यहां लगभग बीस वर्ष बड़ी योग्यता और परिश्रम से कार्य किया। यदि वे राष्ट्रीय आन्दोलन में न लग जाते तो अबतक कभी

के पेन्शन के हक़दार हो जाते। अब वे परदेश में पड़े हैं। उनके गृहस्थ पर संकट है; इसका विचार किया जाना चाहिये।' मेरा विषय कमेटी में पेश हुआ। बजट में गुंजायश थी। और, बहु-मत मेरे पक्ष में होने की आशा थी। पर कुछ मेम्बरों ने कहा, 'यह भी जानते हो, कि बाबूजी पर अधिकारियों की कैसी दृष्टि है।' चले हो, उनसे सहानुभूति दिखाने, ज़रा भी बात खुल गई तो संस्था सर्वथा नष्ट भ्रष्ट करदी जायगी। और, यह हो, चाहे न हो; अगर बाबूजी जैसे आदमियों को इस संस्था से सहायता देने की बात उठेगी तो हम इससे अपना सम्बन्ध रखने में असमर्थ हैं। हमारा त्याग-पत्र तैयार है। इसी घड़ी मंजूर कर लिया जाय।' इस पर कमेटी में लेने के देने पड़ गये।

× × × ×

मुझे यह भी मालूम हुआ कि पुलिस के आतंक से किसी भले आदमी का मेरे घर आकर बाल बच्चों का कुशल क्षेम पूछना तक कठिन हो रहा है। जहां मेरे दो तीन मिलने वालोंकी, सन्देह के आधार पर, गिरफ्तारी की गयी, और उन पर विविध अभियोग लगाये गये, बस, मेरे बहुत से मित्रों और प्रेमियों का प्रेम ठंडा पड़ गया! ओफ़! थोड़ी देर के लिए मानलो, मैं अपराधी ही सही, पर मेरी सहधर्मणी और बच्चों ने क्या बिगाड़ा था; वे भी किसी की दया और सहानुभूति के पात्र न रहे।

× × × ×

मैं अपने मित्र को पत्र देना चाहता था। परन्तु मुझे मालूम हुआ कि मेरा पत्र वहां तक पहुंच नहीं पायेगा, रास्ते में ही रोक लिया जायगा। ऐसी दशा में पत्र भेजने से लाभ क्या ? तो, फिर मेरा समाचार वहां जाये कैसे ? कुछ दिन बाद मुझे ज्ञात हुआ कि हमारे ज़िले के एक निर्वासित की अवधि समाप्त होने वाली है। उसकी मुझसे बहुत सहानुभूति थी। मैंने उससे कहा कि भाई, मेरे लिये थोड़ा कष्ट उठाना। मेरी सहधर्मणी और बच्चों का मेरा यथा योग्य प्रेम कहना। मेरे मित्रों को बता देना कि मैं उनके विविध उपकारों को, विशेषतया, उन्होंने देश-सेवा में जो मेरा साथ दिया था, उसको अपने हृदय में धारण किये हूं। राष्ट्रीय सम्मेलन के कार्य-कर्ताओं से सभक्ति यह निवेदन कर देना कि यहां भी जन्म-भूमि का जप और उसकी ही पूजा पाठ करता हूं। भाग्य में बदा होगा तो कभी उसके दर्शन हो जांयगे; न होंगे तो मेरे हृदय में उसका चित्र सुशोभित ही है मरते समय वह मेरे नेत्रों के सामने होगा, और, मातृ-भूमि का नाम मेरी जिह्वा पर रहेगा। मैं शान्ति-पूर्वक इसका परित्याग करूंगा और, अगले जन्म में फिर स्वदेश की ही गोद में आऊंगा। उसके उद्धार के लिए, जन्म-जन्मान्तर उसकी ही सेवा में रहूंगा। मैं स्वर्ग या मोक्ष आदि के लोभ में कदापि न फसूंगा। मेरा स्वर्ग

मातृ-भूमि के चरण-रज में है, मेरा मोक्ष उसकी चरण-पूजा में है।

× × × ×

संदेशा कह चुकने के बाद, बहुत दिन तक मेरे चित्त में वही बातें घूमती रहीं। माता के दर्शन इस जन्म में होंगे, या नहीं? कब होंगे? मुझे बार बार याद आया कि मैं ने यहां आने से पूर्व एक बार अपने देश में दो वर्ष का कठिन कारावास भुगता था, और उस समय जेल के अधिकारियों ने मुझे नाना प्रकार की भयंकर और ग़ैर-क़ानूनी यातनायें दी थीं। पर, उन दिनों मुझे ऐसे कष्ट का अनुभव कभी नहीं हुआ था, जैसा यहां हो रहा है। बात यह थी कि वहां तक-लीफों को भोगते हुए हर घड़ी यह तो सन्तोष रहता था कि मैं माता की गोद में हूं। मर गया तो अन्त समय में माता की चरण-रज मुझे पवित्र करेगी। परन्तु अब यहां आजाने पर, यद्यपि और बातों की बहुत कुछ सुविधायें मिली हुई हैं, परन्तु ये सब सुविधायें मेरे लिये सुखदायक न होकर कष्ट-प्रद हो रहीं हैं; कारण, कि मैं अपनी प्यारी जन्म भूमि के दर्शन से वंचित हूं। कल्पना किये जा सकने वाले सहस्रों कष्ट एक ओर, और, माता के वियोग का दुख दूसरी ओर। यदि इन दोनों की तुलना की जाय तो मेरे जैसों के लिए दूसरा ही अधिक घातक होता है। अस्तु, यह

बात विचार मेरे यहां आने के प्रथम वर्ष के भीतर के हैं। युग पलट गया।

× × × ×

(द्वितीय)

निर्वासितों की संख्या हमारे राज्य में कई सौ है। फिर कितने ही बन्धु ऐसे हैं जो समय समय पर किसी ख़ास कार्य से दूसरे देशों में गये थे, राज्य ने उनके वापिस आने का निषेध कर दिया है। वे अब ज़बरदस्ती, अनिच्छा-पूर्वक पर-देश की ख़ाक छानते फिरते हैं। इन दोनों प्रकार के व्यक्ति थोड़े बहुत सभी देशों में हैं; हां, जहां शासन व्यवस्था में जनता का यथेष्ठ भाग है, वहां उनकी संख्या कम होने वाली ठहरी।

× × × ×

मैं ने समय समय पर सोचा कि आख़िर देश-निर्वासितों का अपराध क्या होता है। ये प्रायः दूसरों के धन को मिट्टी के बराबर समझते हैं। अपनी मेहनत की कमाई रोटी खाते हैं। चहुंओर छल, कपट, लोभ, रिश्वत आदि का बाज़ार गरम देखते हुए भी वे यथाशक्ति सन्मार्ग का अवलम्बन करते हैं। देशी विदेशी, धनी निर्धन, सब स्त्रियों को अपनी मां बहिन के समान समझते हैं। बात व्यवहार में शान्ति और प्रेम का परिचय देते हैं, किसी से झगड़ा मोल नहीं लेते।

हां, एक बात ज़रूर है, ये किसी व्यक्ति या संस्था की झूठी प्रशंसा नहीं करते। सच्ची बात कहने में ये किसी से भयभीत नहीं होते। ये अपने देश-भक्ति के भाव को किसी से छिपाते नहीं। इन का मत है कि देश-सेवा ही ईश्वर-भक्ति है। भजन पूजन की अपेक्षा यह काम कुछ कम दर्जे का नहीं है कि दीनों की सुधि ली जाय। जिन जिन बातों से उनके कष्ट बढ़ते हैं, उन्हें दूर किया जाय, जो क़ानून या राजनीति देश के आदमियों को भर पेट रोटी और आवश्यकतानुसार वस्त्र देने में असमर्थ है, उसे वे आदरणीय नहीं मानते। यदि जन्म-दातृ मां को प्रेम करना जायज़ है तो मां की मां जननी जन्म-भूमि की सेवा के लिए निरन्तर प्रयत्न करना, उसकी धुन में लगे रहना कैसे ग़ैर-क़ानूनी हो सकता है! जो शासन पद्धति जनता द्वारा, जनता के हितार्थ संचालित न हो, उस में यथेष्ठ परिवर्तन कराने का उद्योग करना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है, धर्म है। ऐसे विचारों वाले थोड़े बहुत आदमी प्रत्येक देश में होते हैं; परन्तु प्राय: वे ज़माने को देखते हैं, और चुप रह जाते हैं। दस पांच आदमी आगे बढ़ें तो शायद वे भी पीछे चलने को तैयार हो जांय। सच्चे देश-भक्तों को यह पसन्द नहीं होता वे अपनी आत्मा के आदेश का पालन करने में दूसरों का मुंह नहीं ताकते; वे इस बात की तनिक भी परवा नहीं करते कि सत्य व्यवहार में उनके साथ कोई है या नहीं। वे अकेले रह कर भी अपना कर्तव्य पालन करते

हैं। इसी से ये बेचारे जेल या कालेपानी आदि का दंड पाते हैं।

× × × ×

आह ! मत-स्वातंत्र्य अपराध है ! वास्तव में, संसार में सच कहना लड़ाई मोल लेना होता है ! पृथ्वी घूमती है, इस साधारण सी बात कहने पर कितने लोगों को कितना कष्ट दिया गया ! "आदमी पोप (मठाधीश) को रुपया देकर अपने पापों का सच्चा 'मुक्ति-पत्र' नहीं पा सकते" इस बात के प्रचारकों पर क्या क्या आफ़तें आयी हैं ! ईश्वर निराकार है या साकार, उसका पुत्र, दूत या अवतार कोई वास्तव में हुआ या नहीं, इस बात पर कितने तर्क वितर्क और वाद विवाद हुए हैं। अब, इस शताब्दी के लोग अपने आप को उदार कहते हैं। धार्मिक विषयों में सहिष्णुता बढ़ी हुई बताते हैं। मुझे तो यह बहुत थोड़े अंश में ही सत्य प्रतीत होता है। फिर, केवल इससे क्या संतोष हो सकता है ? सहिष्णुता और उदारता तो मत-भेद के सभी प्रकार के प्रश्नों में रहनी चाहिये।

× × × ×

यदि कोई आदमी एक प्रकार की धनोत्पादन पद्धति, शासन प्रणाली या समाज व्यवस्था को अनिष्टकारी सिद्ध करना चाहता है, तो उसकी जिव्हा या क़लम पर ताला क्यों लगाया जाता है। उसकी बात ग़लत है, तो उसे उसकी भूल भलमनसाहत से क्यों नहीं बतायी जाती ! इस में

ज़बरदस्ती अत्याचार, और दमन की क्या आवश्यकता है ! और, कदाचित उसका कथन सत्य ही हो, तब तो वह प्रचलित मत के विरुद्ध होते हुए भी विचारणीय है। यदि हम वास्तव में अपना सुधार और उन्नति करना चाहते हैं तो हमें अपने विपक्षियों की आलोचना पर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है। प्रत्येक राज्य को चाहिये कि वह अपने सब नागरिकों की योग्यता और शक्ति से यथेष्ठ लाभ उठावे; उसे अपने आपको स्वाधीन विचार वाले व्यक्तियों की सेवा से तो कभी वंचित ही न करना चाहिये। ओफ़ ! इस समय भिन्न भिन्न राज्य अपने अनेक नागरिकों को निर्वासित करके अपनी कितनी हानि कर रहे हैं !

× × × ×

(तृतीय)

राजनैतिक, सामाजिक आदि सब विषयों में सहिष्णुताका युग कब आयेगा ? कितने वर्ष की देरी है ? यह प्रश्न कैसी अल्पज्ञता का सूचक है ! क्या नये विचार-प्रवाह के आने का कोई समय निश्चित होता है ? कदापि नहीं। किसी भी प्रकार का परिवर्तन करना हो, उसमें कुछ शक्ति की आवश्यकता होती है। कायर या निर्बल कुछ नहीं कर सकते; चाहे सौ वर्ष बीत जांय, और चाहे हज़ार वर्ष हो जांय। निर्भीक, साहसी, आत्म-त्यागी वीर बात की बात में युग

को पलट देते हैं। नये विचार प्रवाह को आमंत्रित करने के लिये भेंट पूजा की आवश्यकता होती है, बलिदान की ज़रूरत रहती है। सस्ते आदमी नहीं चाहियें, लोभी, लालची, खुशामदी और रोगी आदमी नहीं चाहियें। बढ़िया से बढ़िया बहुमूल्य पुरुष-रत्नों की भेंट चढ़ानी होती है। स्वार्थ और राग-द्वेष से सर्वथा मुक्त तपस्वियों की मांग होती है। जब उनकी आहुति काफी मात्रा में होजाती है, सफलता-प्राप्ति में कुछ देर नहीं लगती। प्रत्येक देश में युगान्तर चाहने वालों को खूब सोच समझ लेना चाहिये, वे अपने त्याग से और कष्ट सहन से ही देश-निर्वासितों की वेदना का अन्त कर सकते हैं।

× × × ×

प्रत्यक्ष में प्रमाण की क्या आवश्यकता है! इस शताब्दी में कई देशों के आदमियों ने असम्भव को सम्भव कर दिखाया है। दस ही वर्ष पहले अच्छे अच्छों को यह कल्पना नहीं होती थी कि ये देश कभी स्वतंत्र होंगे। परन्तु बलिदान और त्याग की तो महिमा ही अपार है। पुरुषों और स्त्रियों ने, बूढ़ों और बच्चों ने, अनेक कष्ट सहकर अपने सुखों की ही नहीं, प्राणों तक की आहुति चढ़ाकर स्वतंत्रता का मूल्य पूरी तरह चुका दिया। अब सब आश्चर्य कर रहे हैं। क्या था, क्या होगया! इन भाई बहिनों के दृढ़ और त्याग-पूर्ण

आन्दोलन का ही फल है कि उनके देशों की काया पलट होगयी। दूसरे देशों के भी हितैषी इनसे यथेष्ट शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। वे भी अपने अपने देशों को स्वराज्य-भोगी बना सकते हैं। जब शासन कार्य पर जनता का यथेष्ट नियंत्रण रहेगा जब राज्य-संचालन प्रजा की इच्छानुसार होने लगेगा, तो निर्वासन का प्रश्न स्वयमेव हल हो जायगा, और, जो इस समय निर्वासित हैं, उन्हें भी सादर सप्रेम अपने अपने देश में आमंत्रित किया जायगा। शुभम् !

(१०)

वेश्या की वेदना

"पाप त्याज्य है, पापी नहीं। पाप से घृणा करने में हमारा आत्म-बल बढ़ता है, परन्तु पापी से घृणा करने से हमारी शक्ति कम होती है। एक दूसरे के साथ सहृदयता का विचार व्यवहार रखने में ही हम सबका कल्याण है।"

(प्रथम)

आज मैं ने कड़ा दिल करके निश्चय कर लिया है कि मैं अपनी राम कहानी सुनाऊंगी, अपनी बहिनों की वेदना प्रकट करूंगी। जिन मनुष्यों का दिल पत्थर का हो, वे न सुनेंगे, तो स्वयं पत्थर और पहाड़, नदी और जंगल को ही सुनाऊंगी। मेरी करुण कथा जल थल और आकाश में, अपनी प्रतिध्वनि छोड़ देगी। कुछ समय पीछे लोग उस पर

ध्यान देने को विवश होंगे, यद्यपि देरी करने में उनका बड़ा अनिष्ट हो चुकेगा। आह ! अपनी बीती घटनाओं को याद करके मैं अपनी पीड़ा बढ़ा रही हूं, पर लाचारी है। मेरे जीवन का रहस्य समाज के जीवन का रहस्य है। इसलिये इसका उद्घाटन करना आवश्यक है।

× × × ×

मैं गांव में जन्मी थी। वहां ही मेरी बाल्यावस्था व्यतीत हुई। मेरे मा बाप गरीब थे, पर उन्हें कभी कुछ अभाव प्रतीत नहीं हुआ। मोटा झोटा खा पी लेते थे। जैसा मिला, कपड़ा पहन लिया। दिन रात अपने धंधे में लगे रहते और 'सन्तोषम् परमं सुखम्' का अनुभव करते थे। समय समय पर आस पास के मिलने वालों ने कहा, 'अरे ! सारी उम्र यों ही बिता दोगे ! भले आदमी, मरती जाती दुनियां है। कभी तो तीर्थयात्रा भी कर लेनी चाहिये।' मेरे माता पिता ने कई बार इस बात को टाला; पर आखिर उन्होंने यह निश्चय कर ही लिया, कि ख़र्च लायक कुछ रुपये जमा होजांय तो एक बार दर्शनों के लिए अवश्य निकलें। पीछे, बहुत दिन तक किफायत-शारी और कड़ी दौड़ धूप करके उन्होंने कुछ द्रव्य संचय किया और देशाटन को चल दिये। उस समय मैं नौ दस वर्ष की हूंगी; अपने मा बाप की मैं इकलौती लड़की थी।

× × × ×

एक तीर्थ स्थान से लगा हुआ ही बड़ा शहर था। लगे हाथ उसे भी देखने का, हमारा विचार होगया। शहर में आने का मेरा यह पहला ही अवसर था। नये नये बाज़ार और तरह तरह की सजी हुई दुकानों से हर जगह नुमायश सी मालूम होती थी। भिन्न भिन्न प्रकार के शौकीन आदमी थे। एक एक के ठाठ बाट देखते ही बनते थे। तितलियों की भांति चमकती दमकती औरतों की सजधज देखकर मुझे ऐसा विचार होने लगा कि यदि ये मनुष्य योनि की हैं, तो मैं किसी निम्न श्रेणी की हूं; अथवा, यदि मैं मनुष्य श्रेणी की हूं तो ये अप्सरायें या देवांगनायें होंगी। मैं हर एक की तरफ़ घूर घूर कर देखती थी। मैं सोचती थी कि हमें इनके दर्शन अच्छी तरह कर लेने चाहियें, गांव में यह चमक, दमक, और बांकापन देखने को नसीब न होगा।

× × × ×

मैं कई बार इन दृश्यों को देखने के लिये कहीं खड़ी हो जाती, या बहुत धीरे धीरे चलती। इससे मैं अपने मा बाप से पीछे रह जाती। जब मुझे उनका ध्यान आता तो मैं भाग कर उनके साथ हो लेती; अथवा वे ही ठहर जाते और मुझे बुला लेते। जब कभी मैं बहुत पीछे रह जाती तो मेरे पिता बहुत क्रुद्ध होते; एक वार तो वे बहुत ही बिगड़े। मेरी मा ने उन्हें जैसे तैसे समझाया।

× × × ×

मेले का दिन था मेरे पिता ने खूब चेतावनी दे दी थी कि साथ छूटने न पाये। मैं मा का हाथ पकड़े चल रही थी, पर कभी कभी हाथ छूट ही जाता था। एक बार पीछे से बहुत से आदमियों की ऐसी भीड़ आयी कि कई मिनट तक मैं उसके धक्के से इस तरह आगे बढ़ी चली गयी, मानों मेरे पांव ज़मीन पर काम ही नहीं कर रहे थे। आख़िर, जब भीड़ की गति कुछ मंद हुई तो मैं ने अपने मा बाप को ढूँढना चाहा, पर वे अब कहां ? बहुतेरा इधर उधर दौड़ धूप की। पहर बीत गया, पर उनका पता न चला। चहुं और आंखें फाड़ फाड़ कर देखती थी। आदमियों औरतों का समुद्र सा था, पर मेरे माता पिता कहीं न थे। हा विधाता ! यह क्या हुआ ! डोलते डोलते मेरा शरीर थक गया। मन चिन्ता-ग्रस्त था। दिन ढल गया। रात आगयी।

× × × ×

एक स्त्री मेरी तरफ़ आयी। उसने मेरा सब हाल पूछा। उसकी बातों से मुझे मालूम हुआ कि वह मेरे दुख से दुखी है; उसने मुझे बहुत दिलासा दिया। पीछे कहा, "अब तो देर होगयी है, सबेरे तेरे मा बाप का पता लग जायगा, नहीं होगा तो तुझे तेरे गांव पहुंचा देंगे। रात को तू हमारे यहां विश्राम कर। मेरी मालकिन बड़ी दयालु है।" मैं किसी दूसरे के घर जाने को तैयार न थी; पर, अब इसके

सिवाय और उपाय ही क्या था। रात तो कहीं न कहीं काटनी ही थी। वह स्त्री मुझे अपने साथ इक्के में बैठाकर अपने मकान पर ले आयी, जो वहां से ख़ासे फासले पर था। उसने मुझे अपनी मालकिन से मिलाया। उन दोनों में कुछ काना फूंसी हुई। मुझे इतना ही मालूम हुआ कि मालकिन उस स्त्री से उस-दिन बहुत प्रसन्न हुई, उसने उसे कुछ पुरस्कार भी दिया। मैं समझी कि उस स्त्री ने मेरे साथ जो सहानुभूति और दया का व्यवहार किया है, उसी का यह सुफल है, अस्तु, मेरी वहां बड़ी ख़ातिर की गयी। अनुरोध-पूर्वक मेरे पुराने वस्त्र उतरवा कर मुझे सुन्दर बढ़िया कपड़े पहनाये गये। खाने के लिए जो तरह तरह के षटरस भोजन मिले, वह मैं ने कभी चक्खे ही न थे।

× × × ×

अपना गांव छोड़ने के बाद, अब तक मैंने शहरों की बाहर की ही चमक दमक देखी थी, अब यहां के निवासियों की भीतर की दशा देखकर तो और भी कौतूहल और आश्चर्य हुआ। बाज़ार में मैं ने कुछ 'अप्सराओं' को देखा था, अब मुझे एक अप्सरा का भव्य 'इन्द्र-भवन' देखना भी नसीब होगया। रंग बिरंगी बिजली की रोशनी से मैं चकाचौंध होगयी। तरह तरह के सुन्दर बढ़िया क़ालीन, नर्म और कोमल मसनद, मख़मल के गद्दे, स्वच्छ

निर्मल चादनी, भारी भारी झाड़ फ़ानूस, आदमी के क़द के आइने, मनोहर चित्ताकर्षक रास लीला आदि के बड़े बड़े क्रीड़ा-चित्र ! क्या क्या कहूं ? मैं इस साजो-सामान को देखकर विस्मित थी। मेरी निगाह उस पर न टिकती थी। हे परमात्मा, मैं कौनसी दुनिया में आगयी !

× × × ×

अगले दिन मैं ने मालकिन से कहा कि 'मेरे माता पिता मेरी खोज कर रहे होंगे। उन्हें मेरी बहुत चिन्ता होगी। पर, अब उनसे यहां भेंट होनी कठिन है, और, वे भी जब मुझे यहां न खोज पावेंगे, तो आख़िर कब तक यहां ठहरेंगे। यद्यपि उनका विचार अभी दो तीन स्थानों में और भी जाने का था, परन्तु अब शायद वे सीधे गांव ही लौट जावें। इस लिए तुम मुझे वहां पहुंचाने की कृपा करो।' मालकिन ने कहा, "तुझे यहां क्या कष्ट है ? ख़ैर, आज शामको मैं तेरे साथ आदमी कर दूंगी, यह तुझे तेरे गांव पहुंचा आवेगा। हां, रास्ते में उसे मेरी एक बहिन के यहां कुछ काम है, इस लिए वह वहां होता हुआ जायगा।" इस प्रकार उस दिन मुझे विशेष इच्छा न होने पर भी, उस ऐश्वर्य को अनुभव करने का अवसर मिला। शाम को चलते समय मालकिन ने मुझ से कहा, "देखो, यहां से तुम्हारा पुराने भेष में जाना मुझे शोभा नहीं देता, इस लिए मेरा कहना मानो, और

अच्छे कपड़े पहन कर जाओ।" निदान मुझे अपना भेष बदलना पड़ा। मालकिन के भेजे हुए आदमी के साथ मैं रेल में बैठकर दूसरे शहर में आयी। यहां जिस मकान में मैं ठहरी, उसकी सजावट आदि और भी बढ़ चढ़कर थी। मेरी ख़ातिर तवाज़ा में भी यहां कुछ कमी न थी।

× × × ×

जो आदमी मेरे साथ आया था, वह तो मुझे यहां ही छोड़कर लौट गया। मैं इस घर की मालकिन से, अपने घर जाने की बात कहती तो वह यही जवाब देती कि दो दिन में पहुंचादेंगे, चार दिन में पहुंचादेंगे। इस तरह वह बहुत समय टालती रही। मुझे यहां कोई कष्ट तो था ही नहीं। सब तरह का आराम था। इतना आराम था जितना घर पर मिलना सम्भव ही नहीं था। मुझे यहां का सा ऐश्वर्यमय जीवन अपने गांव में कैसे मिल सकता था? धीरे धीरे मुझे सन्देह होने लगा कि अब गांव का रहना कैसे अच्छा लगेगा! हां, समय समय पर मुझे अपने माता पिता की याद आजाती थी। आह! क्या ही अच्छा होता, यदि वे भी ऐसे स्थान में, ऐसे ऐश्वर्य में रहने वाले होते! बस, अगर माता पिता का प्रश्न न होता तो मैं गांव में जाने का विचार ही कभी अपने मन में न लाती।

× × × ×

एक दिन की बात है। मैं मकान के सामने खड़ी थी।

क्या देखती हूं; मेरे माता पिता एक दूसरे आदमी के साथ कुछ खोजते से आरहे हैं, उनकी आकृति में चिन्ता और कष्ट चित्रित थे। वे मेरी ओर देखते थे, और देखकर रह जाते थे। शायद मेरे नये भेष भूषा के कारण वे मुझे ठीक न पहचान सके हों। पर, उनका पहनावा वही पुराने ढंग का था, इसलिये मुझे उनको पहचानने में देर न लगी। मैं उनकी ओर प्रेम भरी निगाह से देखने लगी। अन्ततः उन्हों ने मुझे पहिचाना। उनके हर्ष का वारा-पार न रहा। मां तो आज इतने दिन से बिछुड़ी हुई अपनी लाड़ली बेटी को पाकर गद्गद ही होगयी। मेरे भी आनन्दाश्रु आने लगे। माता पिता ने मेरा कुशल क्षेम पूछा। बात चीत में उन्हें यह ध्यान आया कि मैं वेश्या के घर में रहती हूं। आह! यह सोचते ही उन का सब हर्ष न जाने कहां चला गया। यद्यपि मेरी माता मुझे घर ले चलने को उत्सुक थी, पर मेरे पिता कुछ सोच में पड़ गये, वह साथ के आदमी की तरफ़ देखने लगे।

× × × ×

साथी ने कहा, "देखते नहीं हो! यह वेश्या के घर में रह रही है, उसी के यहां का खा पी रही है; एक दो दिन से नहीं, पांच महीने से भी ज्यादह से। देखती आंखों मक्खी नहीं निगली जाती। धर्म और जाति का कुछ तो भय मानो। यह तो लड़की का ही प्रश्न है, लड़का थोड़ा ही है। तुम समझना

लड़की हुई ही नहीं, या होकर मर गयी। अपने मन का क्या समझाना ! ऐसी कुल-कलंकिनी का, तुम्हारे जैसे घराने में, रहना कदापि शोभा नहीं देता।" ऐसी बातें सुन कर मेरे पिता किंकर्तव्य-विमूढ़ होगये। उन्हें सूझ नहीं पड़ा कि क्या करें, सामाजिक रूढ़ियों की रक्षा करें, या अपने वात्सल्य भाव का परिचय देते हुए मेरे भविष्य को सुधारें। मेरी मां की दशा तो अत्यन्त करुणोत्पादक थी; उस की शोकाग्नि के कारण उस के नेत्रों के आंसू भीतर ही भीतर सूख जाते थे। उस का हृदय रोरहा था, पर उस रोने को उन के साथी ने तो कुछ समझा ही नहीं; पिता ने थोड़ा बहुत समझ भी पाया, तो उस साथी के रूप में अवतरित अन्ध विश्वासों ने उसे अनसमझ कर दिया। मैं अपने विषय में क्या कहूं ! "मेरी अम्मा ! हाय मेरी अम्मा !" इन शब्दों के अतिरिक्त मेरे पास और कुछ कहने सुनने को न था। मैं नहीं जानती थी कि मैं ने ऐसा क्या अपराध किया, जिसे मेरे माता पिता भी क्षमा न कर सके।

× × × ×

यह शोक-जनक दृश्य थोड़ी देर इसी रूप में,रहा। पर नाटक के अन्तस्तल में कोई अन्तर न आया। अन्ततः, मिथ्या धर्म की, और निराधार कल्पनाओं की विजय हुई; मेरे पिता ने मुझे अपने साथ न ले जाने का ही निश्चय किया। यद्यपि माता का मत ऐसा न था, पिता की

दृढ़ता देख कर उससे उनका विपेश विरोध करते न बना। निदान मैं जहां की तहां रह गयी। इतने दिन पीछे जिस आशा का उदय हुआ था, वह निराशा में परिणत होगयी। माता पिता ने अपना रास्ता लिया। ओफ! सामाजिक रूढ़ियों और अन्ध विश्वास ने मुझे आज उस माता से ज़बरदस्ती अलग कर दिया, जिसने मेरे लिये इतना कष्ट उठाया था!

× × × ×

घर की मालकिन यह सब दृश्य देख रही थी। मेरे मां बाप के जाने के बाद उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। मेरे विषय में उसे अब तक यह चिन्ता सी रहती थी, कि कहीं यह चली न जाय। अब उसने देख लिया कि ख़ास मेरे माता पिता यहां आये और मुझे यहां ही छोड़ गये। अब उसे भरोसा होगया कि मैं बार बार गांव में अपने घर जाने का आग्रह न करूंगी। मेरा अब कहीं कोई ठिकाना ही न रह गया था। भला हो या बुरा, मुझे इसी घर को अपना घर बना कर रहना पड़ेगा। अस्तु, मैं वहां तीनचार साल तक रहती रही। मेरा जीवन खूब सुखमय रहा।

× × × ×

ओफ! मुझे क्या मालूम था कि मेरी इस घर में इतनी ख़ातिर तवाज़े क्यों होती है। मेरा इतना श्रृंगार और सजावट किस लिए की जाती है! आह! मुझे यह कल्पना भी

न हो सकती थी कि मैं उस बकरे की तरह हूं जिसे खिला पिला कर मोटा इस लिये किया जाता है कि उसका मांस बढ़ जाय, और कसाई के हाथ उसके दाम अधिक उठें। मैं भी इस घर की मालकिन के लिए एक विक्रय की वस्तु थी, जितना मेरा शृंगार आदि अधिक होगा, सौन्दर्य अधिक प्रतीत होगा, उतना ही कामी और दुराचारी पुरुषों के लिए मैं अधिक बहु-मूल्य बन जाऊंगी। समय पाकर मालकिन ने मेरे खूब दाम उठाये। वह हत्यारी मुझे एक ही जगह बेच कर संतोष कर लेती तो भी ख़ैर थी। पर उस दुष्टा ने तो मुझे एक किराये की वस्तु बना लिया। जो नर-राक्षस जितने समय का उसे मेरा मेहनताना देता, उतने समय के लिये मुझे उसकी प्रेमिका बनना पड़ता; उतने समय मेरा रूप यौवन उसका हो जाता। ओफ़! कितनों ने मुझे भ्रष्ट किया, और कितने मुझसे पतित हुए। हे परमात्मा! मैं इस पाप-पूर्ण समाज में क्यों इतने दिन, इतने वर्ष ज़िन्दा रही। कई वार मैं ने इस पापी शरीर को छोड़ देने की चेष्टा की, परन्तु कभी सफलता न हुई।

× × × ×

हरे! जितने समय तक घर की मालकिन को मेरे द्वारा धन राशी मिलती गयी, मेरा वहां खूब स्वागत सत्कार होता रहा। पीछे, जब मेरी उम्र समय से पहिले ही ढली सी

हो गयी, मैं रोगी, निर्बल, और मुर्झायी हुई सी होगयी, तो उस पापिन को मेरे लिये खाने पीने को देना ही भारी होगया। मुझ से घर की झाड़ू बुहारी लगवाने और झूंटे बर्तन मंजवाने, तथा पानी भरवाने आदि का काम लिया जाने लगा। स्वभाव और आदतें विगड़ चुकी थीं। शरीर भी दुखी था। मुझ से परिश्रम का कार्य न हो पाता था। फिर, मैं उसकी दृष्टि में व्यर्थ जचने लगी। उसने मुझे घर से निकाल बाहर किया; ऐसी दशा में निर्वाह करना मुश्किल है। क्या करूं ? कहां जाऊं ? भयंकर रोग से ग्रसित हूं। परमात्मा की बड़ी दया हो, यदि वह इस पापी और निर्दयी समाज से मुझे सदा के लिये उठाले।

× × × ×

द्वितीय

ओफ़ ! ऐसी अभागी बहिनें इस शहर में अनेक हैं, और ये हमारे देश के सभी, विशेषतया बड़े बड़े शहरों में बहुत हैं। संसार के अन्य देशों की, विशेषतया सभ्य समझे जाने वाले धनी देशों की, दशा भी ऐसी ही है, और कहीं कहीं इससे भी खराब है। राष्ट्र-संघ की रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि योरप अमरीका के कितने ही भागों में व्यभिचार के लिये स्त्रियों की ख़रीद बिक्री का व्यापार संगठित रूप से चल रहा है। जिन लड़कियों से ज्यादह नफ़ा होता है उनकी खूब

तलाश की जाती है। कहीं कहीं तो छोटी उम्र की नाबालिग़ वेश्याओं की भी संख्या काफ़ी बड़ी है। ये बहलाकर, फ़ुसला कर, अथवा बहका कर सिनेमा या नाटक-गृह आदि की नौकरी के बहाने से एक देश से दूसरे देश में लेजायी जाती हैं, और अन्त में इन्हें इस नीच कर्म करने की परिस्थिति में डाल दिया जाता है।

× × × ×

अधिकांश आदमी हमारे दुःखों से नितान्त अनभिज्ञ हैं। वे हमें बढ़िया कपड़े पहने और शृंगार किये हुए, तथा भव्य भवनों में रहते हुए देखते हैं, और धोखे में पड़ जाते हैं। वे यह अनुमान करने लगते हैं कि हम सुखी हैं। परन्तु हमारी वेदना हमारा हृदय ही जानता है। हम क्या कहें; किससे कहें ? भले आदमियों को, महात्मा और धर्मात्मा बनने वालों को, लेखकों कवियों और नेताओं तथा सुधारकों को, हमारी व्यथा सुनने का अवकाश कहां ? वे तो जान बूझ कर हमारे प्रसंग को टाल देना चाहते हैं। हमारी कष्ट-कहानी, सुन कर, या औरों को सुनाकर वे सभ्य समाज में लांछित होना नहीं चाहते।

× × × ×

हम पापिनी हैं, दुराचारिणी हैं, अपराधिनी हैं, पर क्या इसलिये हम, सज्जनों की दया और सहानुभूति की बिल्कुल

अधिकारिणी नहीं ? क्या हम ईश्वर की सृष्टि नहीं, क्या हम अपने देश और समाज का अंग नहीं ? जड़, कहे जाने वाले पदार्थों में, हमें सूर्य अपनी उष्ण किरणों से, चन्द्रमा अपनी शीतल रश्मियों से, वायु अपनी सुगन्धि के लाभ से वंचित नहीं करता। परन्तु, चेतन मनुष्य हम से घृणा करते हैं। उनके तिरस्कार और अनादर से क्या हमारा सुधार होजायगा ? हम भी किसीकी बहिन और किसीकी बेटी हैं। उदार हृदय अपने पराये का भेद नहीं करते, फिर वे हमें अपनी बहिन बेटी समझ कर हम से प्रेम और सहानुभूति का भाव क्यों नहीं रखते ?

× × × ×

कुछ सुधारक या उपदेशक हमें कहेंगे कि शृंगार और फ़ैशन छोड़ दो, तथा सादगी से जीवन व्यतीत करो। बात ठीक है, और हमें इसकी कोशिश करनी चाहिये। परन्तु हम सविनय पूछना चाहती हैं कि संसार में, बाज़ार में, पब्लिक में, शृंगार आदि का इतना महत्व क्यों है ? जिसकी अच्छी बढ़िया पोशाक न हो, जो फटे पुराने कपड़े पहने हो उसका समाज में अनादर क्यों होता है ? पैसे वाले यह क्यों नहीं सोचते कि जब वे बन ठन कर निकलते हैं तो दूसरों को भी वैसा करने का प्रलोभन मिलता है। आखिर मनुष्य स्वभाव है; बहुतों में कमज़ोरी होती है। जब वे देखते हैं कि समाज

में पैसे का आदर है, आमदनी का मार्ग चाहे जैसे कलुषित हो, रुपया चाहे छल कपट, सट्टा फाटका, रिश्वत, डाली, भेंट, दान दक्षिणा आदि किसी भी प्रकार से आया हो, समाज में उजले कपड़े वालों को ही उजला समझा जाता है, तो वे भी पैसे वाले बनने के इच्छुक हो जाते हैं। बहुत सी पतित बहिनों के पतन का बहुत कुछ रहस्य इसी में है। वे अपना चरित्र और शील बेचती हैं तो उन्हें केवल इस अंश में दोषी ठहराया जा सकता है कि उनके हृदय और आत्मा कमज़ोर थे। वे विविध प्रलोभनों से न बच सकीं। परन्तु, धनी और शौकीन क्या वे आदमी कुछ दोषी नहीं, जिन्होंने जगह जगह ऐसे प्रलोभन बखेर रखे हैं, जिनमें कमज़ोर व्यक्ति सहज ही फंस जाते हैं ?

× × × ×

(तृतीय)

जहां तहां लोगों का ध्यान इस पाप को दूर करने, अथवा घटाने की ओर आकर्षित हो रहा है। यह बात अब किसी से छिपी नहीं कि पतित बहिनों में से अधिकांश अपना धन्धा आर्थिक या सामाजिक मजबूरी से करती हैं। रोटी कपड़े का प्रबन्ध हो जाने पर इनमें बहुत सी सुयोग्य नागरिक हो सकती हैं। इन्हें बताया जाय कि आजीविका के लिये ये

कौनसा ख़ास काम करें; साथ ही उस काम के करने के लिये इन्हें आवश्यक साधन प्राप्त होने चाहियें, और, जब तक उस काम से इनके खाने पहनने को काफ़ी न मिलने लगे, तब तक के लिये इनके निर्वाह के वास्ते समुचित व्यवस्था की जाने की भी आवश्यकता है।

× × × ×

बहुत सी लड़कियां बहुत ही साधारण या व्यापक कारणों से वेश्या बन जाती हैं। यदि बाल्यावस्था में इनकी सार संभार हो, अज्ञान, लज्जा, या संकोच आदि के वश होने वाली सामाजिक त्रुटियों का ठीक निपटारा कर दिया जाय तो इन्हें तथा समाज को पतित और निन्दित न होना पड़े। स्मरण रहे कि वेश्याओं की सृष्टि अथवा वृद्धि के लिये समाज का वातावरण बहुत कुछ दोषी है। जहां शौक़ीनी फ़ैशन, आडम्बर, मिथ्या धर्माचार, धन की अत्यन्त प्रतिष्ठा, और, निर्धनता और बेकारी का विस्तार होगा, जहां सादगी संयम और त्याग का अभाव होगा, जहां सनसनी फैलाने वाले शृंगार-रस-पूर्ण सिनेमा, थियेटर और नाटक घर आदि होंगे वहां इन पाप-वृक्षों के फल-स्वरूप, अन्यान्य बातों में, वेश्या वृत्ति अवश्य होगी। इस प्रकार वेश्यायें एक व्यापक सामाजिक बुराई का परिणाम है। मनुष्यों को चाहिये, कि इस सामाजिक बुराई को हटाने के लिये, आधुनिक सभ्यता

और संस्कृति में यथेष्ठ संशोधन करें।

× × × ×

कोशिश करने से सांसारिक आडम्बरों और प्रलोभनों में कुछ कमी अवश्य हो सकती है, परन्तु इनका सर्वथा लोप हो जाने की क्या, इनमें यथेष्ठ कमी होने, और सादगी का समुचित प्रचार होने की भी सहज ही आशा नहीं की जा सकती। इस लिये आवश्यकता यह है कि घरों में लड़के लड़कियों की शिक्षा और संस्कार ही इस तरह के हों कि उनकी आत्मा में दृढ़ता हो, तनिक तनिक से प्रलोभनों के वेग से, वे इधर से उधर न बह जांय। चहुं ओर गर्म हवा के चलते हुए भी, वे अपनी रक्षा कर सके। मनुष्य होकर भी कोई अपने मन पर विजय न पा सके यह बड़ी लज्जा की बात है। पुरुष सदाचारी हों, अविवाहित होकर भी ब्रह्मचारी हों, या एक-पत्नी व्रति हों; वहां वैसे वातावरण में कोई वेश्यागामी न होगा, फिर वेश्यायें स्वयं न रहेंगी।

× × × ×

क़ानून इस विषय में कहां तक सहायक हो सकता है? क़ानून के द्वारा वेश्या-वृत्ति पूर्णरूप से हट तो नहीं सकती; हां, वह बहुत कुछ कम अवश्य हो सकती है। स्त्रियों का विक्रय व्यापार घट सकता है, इससे वेश्या-वृत्ति कम हो जाना स्पष्ट ही है। क़ानून से वेश्यालयों को उठाया या तोड़ा जा

सकता है, और नहीं तो उन्हें नगर के मुख्य बाज़ारों आदि से दूर एकान्त स्थान में हटाया जा सकता है; इससे भी जन साधारण के सदाचार की बहुत कुछ रक्षा हो सकती है। लड़कियों को बहकाने या भगाने वालों के लिये कठोर दंड की व्यवस्था होने से भी उद्देश्य-सिद्धि में सहायता मिल सकती है।

× × × ×

योरप अमरीका के कुछ भागों ने अपने अपने वेश्यालय उठा दिये हैं, क्योंकि ये लड़कियों के फंसाने के अड्डे थे, और इनके कारण लड़कियों को विदेश ले जाने वालों एजेन्टों को बड़ा सुभीता रहता था। पूर्वीय देशों में भी वेश्या-वृत्ति कम करने का प्रयत्न हो रहा है। जापान वालों ने इस दिशा में अच्छी उन्नति की है। कुछ वर्ष हुए, उन्होंने विचार किया था कि जब तक हमारी स्त्रियां वेश्यायें बनी रहेंगी तब तक हम संसार में कलंकित रहेंगे, हम अन्य देशों के सामने मस्तक ऊंचा करने में असमर्थ होंगे। अतः उन की सरकार ने भिन्न भिन्न देशों में रहने वाले अपने राजदूतों को सूचना दी कि सब जापानी वेश्याओं को जापान भेज देने का प्रबन्ध किया जाय। उसने यह भी निश्चय किया कि सरकार की ओर से उन्हें हरजाना दिया जाय। भारतवर्ष में भी कुछ जगह वेश्या-वृत्ति कम करने, तथा लड़कियों को भगाने और बेचने का रोज़गार रोकने, के लिये सरकार को क़ानून बनाने की

ज़रूरत मालूम हुई है।

× × × ×

इस प्रकार के उपायों से जो कुछ किया जा सके, अच्छा है। परन्तु व्याधि को पूर्ण रूप से निवारण करने के लिये इनके उत्पादक कारणों को समूल नष्ट किया जाना चाहिये, लोगों को सदाचार और सामाजिक आरोग्यता का ज्ञान कराना होगा। उन आचार विचारों में समुचित संशोधन करना होगा जिनसे लोग इस व्याधि के शिकार होते हैं। इस कार्य के लिये जो सज्जन जीवन-दान करें वे धन्य हैं। वेश्याओं में से भी जो अपने पतित व्यवसाय की बुराइयां समझ कर इसे त्याग चुकी हैं, वे स्वयं सेविका बन कर आगे बढ़ें; वे जितनी अच्छी तरह अपनी श्रेणी की बहिनों को सुमार्ग पर ला सकती हैं, उतनी सफलता औरों को कम मिल सकेगी। परमात्मन् ! भिन्न भिन्न देशों में इस पाप का अन्त हो; लोगों को सुबुद्धि आये !



(११)

लेखक की वेदना

"बहुत सी पुस्तकें ऐसी होती हैं जो केवल इधर उधर से देखी जांय; कुछ ऐसी होती हैं जो एक बार झटपट समाप्त करके रख दी जांय; ऐसी रचनायें करने वाले लेखक कितने हैं जो बारबार ध्यान-पूर्वक पढ़ने और मनन करने योग्य हों?"

(प्रथम)

दूसरों के सम्बन्ध में समय समय पर बहुत लिखा, सुख की बातें लिखीं तो दुख की भी अनेक बार लिखीं। कठोर कर्तव्य चाहता है कि आज अपने ही सहयोगी बन्धुओं की राम कहानी सुनाऊं। औरों के सम्बन्ध में लिखना, और बात है; तथा अपनों के विषय में लिखना, कुछ और। जो हो, मुझे अब तो अपनी बात कहनी ही है।

× × × ×

उस घटना को सत्तरह वर्ष बीत गये हैं, पर कल की सी बात मालूम होती है। भिन्न भिन्न देशों के मेरे कई साथी अन्तर्राष्ट्रीय विश्व विद्यालय के बोर्डिंग हाउस में बैठे हुए थे। छुट्टी का दिन था। हम लोग भोजन कर चुके थे। यहां वहां की बातों में मातृ-भाषा सम्बन्धी चर्चा चल पड़ी। एक ने कहा कि आधुनिक उन्नत शैली के नगर-निर्माण पर उत्तमोत्तम पुस्तकों की बड़ी आवश्यकता है। हमारी भाषा में इस विषय की बहुत सी पुस्तकें हैं, फिर भी और लिखी जारही हैं। दूसरे ने कहा कि हमारे देश में कई वर्ष से साहित्य संघ द्वारा नियुक्त एक दर्जन विद्वान प्राचीन सभ्यताओं का अध्ययन कर रहे हैं, अगले दो तीन वर्ष में हम बतला देंगे कि संसार में हमारा साहित्य इस विषय में किसी से पीछे नहीं है। मेरे तीसरे साथी ने कहा कि हमारे देश में सरकार की सहायता से एक ऐसा फ़ंड (कोष) क़ायम होगया है, जिसके सूद से पांच केन्द्रीय स्थानों में पन्द्रह २ साहित्य सेवी स्वतंत्रता-पूर्वक लेखन कार्य करेंगे। वे अपनी, तथा अपने परिवारों की सब प्रकार की आवश्यकताओं से निश्चिन्त रहेंगे। उक्त केन्द्रीय स्थानों में साहित्य सम्बन्धी वृहद् संग्रहालय रहेंगे, और जहां की पुस्तकें, रिपोर्टें, या पत्र पत्रिकायें आदि जिस जिस साहित्य-सामग्री की उन्हें आवश्यकता होगी, उन्हें दी जाने की यथेष्ठ व्यवस्था रहेगी।

× × × ×

इन मित्रों की बातें सुन कर मेरा हृदय विचार-सागर में डूब गया। ये लोग उन्नत देशों के हैं। उन राज्यों को अपनी अपनी मातृ-भाषा का अभिमान है, और उसके साहित्य भंडार की उन्नति करने में वे पूर्ण रूप से दत्त-चित्त हैं। इधर हमारा देश है। जो यहां कुछ ज्यादा विद्वान हुआ, उस से साहित्य को कोई लाभ नहीं पहुंचता, उसका मस्तिष्क सरकारी पदों के लिये नीलाम होजाता है। कभी कोई कुछ लिखता भी है तो उसे अपनी भाषा तो हीन जंचती है, वह अपनी योग्यता का परिचय विदेशी भाषा में देता है। क्यों न हो, जब कि उसने उच्च शिक्षा उसी भाषा द्वारा पायी है, और अपने समस्त छात्र-जीवन में उसकी ही महिमा के गीत सुने हैं। ओफ़ ! हमारे यहां देशोन्नति देशोन्नति तो सब चिल्लाते हैं; पर मातृ-भाषा की सुधि कितनों को है ! और, बिना मातृ-भाषा की समुचित सेवा पूजा के, देशोद्धार हो ही कैसे सकता है ! हमारे देश में राज्य और समाज कब इस ओर समुचित ध्यान देंगे ? अस्तु, औरों की बात वे जानें, मुझे तो अपना कर्तव्य पालन करना चाहिये। बस ! ठीक है, मेरी समझ में आ गया। मेरी समस्या हल हो गयी। मैं अपने जीवन में जो कुछ मुझसे बनेगा, साहित्योन्नति के लिए तप, त्याग और तपस्या करूंगा। बस, आज से मेरे जीवन का लक्ष्य स्थिर हो गया।

× × × ×

महाविद्यालय की पढ़ाई पूरी करके मैं अपने निर्धारित कार्य की तैय्यारी करने लगा। पहिले मैं ने मालूम किया कि हमारी मातृ-भाषा में, किन किन विषयों के साहित्य की बहुत आवश्यकता है, और उनमें से किस में मेरी सेवा उपयोगी होगी। मैं ने कई सज्जनों से परामर्श करके अपनी प्रथम रचना का विषय-क्षेत्र निश्चित कर लिया। अपनी जमा पूंजी ख़र्च करके, और कुछ मांग तांग कर आवश्यक सामग्री इकट्ठी की। ढाई तीन साल में जाकर मेरी रचना तैयार हुई। बड़ा सन्तोष हुआ। बहुत प्रसन्नता हुई। सोचता था, कि मेरी पुस्तक अपने महत्व-पूर्ण विषय की प्रथम रचना है। इसका मुझे बहुत बड़ा पुरस्कार मिलेगा। पर, मैं ने कुछ धन संग्रह करने के लिए तो यह काम किया ही नहीं है। हां, इतनी प्राप्ति ज़रूर चाहता हूं कि अगले साल डेढ़ साल के लिये मेरा निर्वाह हो जाय, जिससे मैं निश्चित होकर तन मन से दूसरी रचना तैयार कर सकूं।

× × × ×

पुस्तक छपाने के लिये मैं ने पत्र व्यवहार करना आरम्भ किया। कुछ ने तो उत्तर ही नहीं दिया। जो जवाब मिले, वह भी निराशाजनक थे। किसी को मेरी रचना का विषय नापसन्द था, किसी ने लिखा कि वर्तमान राजनैतिक परिस्थिति के कारण, हम ऐसी पुस्तक प्रकाशित करने में असमर्थ हैं।

आख़िर एक सज्जन ने हस्त लिखित प्रति देखने को मंगायी। मेरे हृदय में आशा का संचार हुआ। पुस्तक वहां भेजदी गयी। कुछ समय बाद, प्रकाशक के निर्णय की राह देखने लगा। एक एक दिन करके सप्ताह बीत चले। महिने हो गये। मैं ने पत्र पर पत्र देने शुरू किये, पर किसी का उत्तर नहीं मिला। आख़िर मेरे एक रजिस्टरी पत्र का जवाब मिला कि अब विचार हो रहा है। इस प्रकार, फिर कुछ समय प्रतीक्षा की, और, बार बार पत्र लिखने पड़े। निदान पूरा वर्ष ही बीतने को आया। मुझे शंका होने लगी कि कहीं मेरी हस्त-लिखित प्रति ही, जो मेरे इतने परिश्रम का फल है, न खोई जाय। अन्ततः मैं स्वयं रेल किराया ख़र्च करके उस प्रकाशक की सेवा में जा उपस्थित हुआ। प्रकाशक महोदय ने कहा "आप को यहां आने का कष्ट उठाना पड़ा, इसके लिए क्षमा करें। खेद है, आपकी रचना हमारे काम की नहीं मालूम हुई।" मैं ऐसे उत्तर की कुछ कुछ आशा करने लग गया था, इस लिये मुझे इन शब्दों को सुन कर विशेष दुख न हुआ। हां, कुछ समय पश्चात् जब मुझे मालूम हुआ कि मेरी रचना का बहुत सा भाग थोड़ा बहुत बदल कर एक कल्पित लेखक के नाम से, उसी प्रकाशक के यहां से पुस्तकाकार छप गया, तो मेरे हृदय में जो भाव उठे, उन्हें मैं वर्णन नहीं कर सकता।

× × × ×

मेरी हस्त-लिखित प्रति को तैयार हुए इतना समय हो गया था कि उस की कई बातें अब पुरानी तथा अपूर्ण मालूम होने लगीं। फिर, इस विषय की दूसरी पुस्तक छप चुकने के कारण भी, मुझे अपनी रचना साधारण सी जंचने लगी। इसे अब फिर विशेष उपयोगी बनाने के लिये बड़े परिश्रम और समय की आवश्यकता थी। एक बार सोचा कि इस से तो अच्छा यही है कि पुस्तक पुनः नये सिरे से लिखी जाय। परन्तु, पुरानी वस्तु का मोह नहीं छूटा। निदान, बड़ी कठिनाई से, जैसे तैसे, मैं ने उसे ठीक किया। अब पुनः पुस्तक छपाने का प्रश्न उपस्थित हुआ।

× × × ×

मैं ने एक प्रिय मित्र से कहा, कि मुझे कुछ रुपया उधार देदो। मुझे अपनी पुस्तक छपानी है। उस की विक्री से जो दाम आयेंगे, उन से तुम्हारी रक़म चुका दूंगा, और आगे के लिये मैं अपना काम चलाने लगूंगा। मित्र ने मुझे कुछ द्रव्य तो दे दिया, पर मुझे मालूम हुआ कि वह मेरी बातों की सार्थकता न समझा। इस लिए यद्यपि मैं यह जानता था कि उस का दिया द्रव्य मेरी पुस्तक छपाने के लिए काफ़ी न होगा, तथापि मैं ने उससे कुछ और कहना उचित न समझा। और अपनी पुस्तक के 'मैटर' में ही कांट छांट करके उसे इतना छोटा कर लिया, जिससे प्राप्त द्रव्य से उसकी छपाई

का ख़र्च दिया जा सके। निस्सन्देह ऐसा करने से कई स्थानों पर पुस्तक की रोचकता कम हो गयी; एक दो जगह तो विषय अस्पष्टता की सीमा को पहुंचता हुआ मालूम हुआ। परन्तु इसका कोई उपाय न था। प्रेस के लिये कापी तैयार करने, और प्रूफ देखने आदि का सब काम मुझे ही करना पड़ा। मैं पुस्तक की छपाई, काग़ज़, तथा मुख-पृष्ठ आदि बहुत साधारण ही रख सका। चित्रों के अभाव से वह विचित्र ही रही। आखिर, जैसे तैसे, भली बुरी, पुस्तक छप तो गयी; यही मेरे संतोष के लिये बहुत था।

× × × ×

पुस्तक सम्पादकों के पास भेजी गयी। कुछ प्रतियां मित्रों को और शिक्षा संस्थाओं के अधिकारियों को भेंट की गयीं। बहुत सी जगहों से प्रशंसा और बधाई के पत्र आये। समालोचनायें भी अच्छी निकलीं, और उन के सहारे कहीं कहीं से मेरे पास एक एक दो दो प्रतियों के आर्डर आये। कुछ सज्जनों का ध्यान मैं ने पत्र लिख कर पुस्तक के प्रचार की ओर दिलाया, तो उन्हों ने उसकी एक एक प्रति मंगवा लेने की कृपा की। एक सज्जन ने तीस प्रतियां मोल लेकर भिन्न भिन्न स्थानों के अध्यापकों में वितरण कीं। तथापि, कुल मिलाकर पुस्तक से काफी आय न हुई। दस महिने में जाकर, प्रेस को दी हुई रकम का आधा भाग वसूल हुआ। यह

रुपया भी फुटकर रूप में आने के कारण मेरे घर के ख़र्च में उठता रहा, कुछ जमा न हो सका । जिस आशा पर मैं ने रुपया उधार लिया था, वह पूरी न हुई । पर, इतना अच्छा हुआ, मित्र सहृदय था, उसने मेरी स्थिति का विचार किया, और मुझ से रुपया वापिस पाने की आशा छोड़ कर भी अपना प्रेम—व्यवहार बनाये रखा ।

× × × ×

इस अनुभव के बाद मैं ने निश्चय किया कि अपने निर्वाह के लिए तो कुछ नौकरी ही करनी ठीक होगी। अस्तु, अब मैं छुट्टी के दिन तथा अन्य अवकाश के समय लेखन कार्य करता। रात को भी थोड़ी बहुत देर मैं इस काम के लिये बैठता। हां, कभी कभी ऐसा भी अवसर आया कि अपनी पत्नि की बीमारी या अन्य आवश्यक कार्यों के कारण, मुझे हफ्ते दो हफ्ते ही नहीं, दो दो तीन तीन महिने अपना रचना कार्य स्थगित करना पडता, और, जब मैं उसे संभालता, तो मेरी विचार धारा लुप्त हो जाने से मुझे बड़ा परेशान होना पडता ।मेरा बहुतसा परिश्रम व्यर्थ जाता। निदान, इस प्रकार चार वर्ष में जाकर मेरी एक रचना लगभग पूरी, और, एक आधी तैयार हो पायी ।अब इन रचनाओं को पूरी करने के लिये मेरी आतुरता ऐसी बढ़ी कि मैं ने अपने परिचित मित्रों और शुभचिन्तकों के परामर्श की

नितान्त अवहेलना करके, अपनी नौकरी छोड दी; और, सब समय उनमें ही देने लगा। निदान नौ, महीने में मैं ने उन्हें पूरा कर लिया। अब उन्हें छपाने की चिन्ता हुई। मेरे पास पूंजी थी नहीं, और, जिस मित्र से कुछ आशा थी, उसकी पहले ही उधार लिए बैठा था। आख़िर, इच्छा न होते हुए भी प्रकाशकों के दरवाज़े खटखटाये। परन्तु किसी को वे पसन्द न आयीं। एक सज्जन ने अच्छे शिष्टाचार से बात चीत की। मैं ने उनकी यही बड़ी कृपा समझी कि उन्होंने मेरी रचनाओं को अस्वीकार करते हुए यह तो कहा 'भाई ! चीज़ तो अच्छी है; पर क्या करें, देश में इसकी क़दर करने वाले पाठक कम हैं।

× × × ×

ऐसी बातें सुनकर मुझे अपने ऊपर बड़ा क्रोध आया। इतनी मुद्दत में जाकर तो ये पुस्तकें बनायीं, इतना ऋणी हुआ। घर में खाने को नहीं। और यहां ये चीज़ें भी ऐसी रहीं कि इनके कुछ दाम नहीं लगते ! ओफ़ ! न मैं इन्हें ऐसी बढ़िया बनाता, न यह जोखम उठानी पड़ती ! मैं ने कैसा अनर्थ किया; जिन चीज़ों को दुनियां चाहती नहीं, उन्हें बनाया ही क्यों ? अब इनका क्या करूं ? अग्नि की भेंट कर दूं, या जलार्पण ?

× × × ×

अपनी प्रतिभा के विकास का मार्ग बन्द किया, तो दूसरी ओर देश को अपनी अमूल्य सेवा से वंचित कर दिया। आह! स्वतंत्रता देवी की भांति, सरस्वती भी बलिदानों की कुछ कम इच्छुक मालूम नहीं होती।

× × × ×

सम्भवतः विविध विघ्न वाधाओं और आपत्तियों की आशंका से ही लेखक कहे जाने वाले कुछ लोगों ने साहित्य का आदर्श बिगाड़ना आरम्भ कर दिया है। वे इस महान कार्य के लिये अपनी क्षमता न पाकर कार्य को ही सुगम और निम्न श्रेणी का बनाने पर तुल जाते हैं। उस दिन की बात कैसी चिन्तनीय है! मेरे उस सहयोगी मित्र ने कहा था, "मैं जनता की रुचि और आवश्यकता का विचार करके लिखता हूं। जो प्रकाशक अच्छा मेहनताना देता है, मैं उसका काम कर देता हूं, चाहे कोई मुझ से कुत्ते बिल्लियों की कहानी लिखाले, या किसी आंख के अंधे और गांठ के पूरे की प्रशंसा कराले। समालोचक और किताबों के कीड़े मेरी रचनाओं के विषय में चाहे जो कुछ कहा करें, मुझे मतलब अपने टकों से रहता है। मैं प्रकाशकों को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करता हूं। वे मेरी रचना का खूब आदर सत्कार करते हैं। उन्हें कई बहु-रंगे चित्रों सहित छपाते हैं। जिल्द और 'गैट-अप' खूब चित्ताकर्षक रखते हैं। इसके अतिरिक्त, जितना व्यय वे इसमें करते हैं, उससे कई गुणा पुस्तकों के बढ़िया

से बढ़िया विज्ञापन प्रकाशित करने में करते रहते हैं। प्रशंसात्मक समालोचनायें निकलवाने में भी कुछ कसर नहीं रखते। ये सब बातें वे करें क्यों नहीं, जब उन्हें इनसे अच्छा मुनाफ़ा रहता है।

× × × ×

इसी 'विजयी' लेखक ने मुझसे कहा था, 'मैं ने लेखन-कला खूब सीख ली है। मेरी क़लम का जादू अच्छे अच्छों ने जान लिया है। जब किसी धार्मिक, सामाजिक, या राज-नैतिक वाद विवाद के विषय पर लिखना होता है, और, बड़े आदमियों—महन्तों, पंचों या राज्याधिकारियों के प्रति कुछ कहना होता है तो एकाध बात उनकी आलोचना में कहकर दो एक बातें अपनी सफ़ाई की, और, कुछ इधर उधर की कह देता हूं। इस प्रकार सर्व साधारण पाठकों में मैं 'सब पहलुओं से विचार करने वाला' और, सत्ताधारियों में मैं 'कुल मिला-कर निर्दोष, बना रहता हूँ। क्या तुम्हें अब भी मेरे सफल लेखक होने में कोई सन्देह रहा?

× × × ×

मेरी उदासीनता को ताड़कर, इस भाई ने मुझसे कहा था, कि 'देखो! तुम सिद्धान्त सिद्धान्त की दुहाई दिया करते हो। ज़रा, इतिहास का अनुशीलन करो। प्रत्येक देश में ऐसे कवि और लेखक ही अधिक होते हैं, जो जनता की

रुचि को देख कर चलते हैं। जब शृंगार रस के पाठक अधिक संख्या में हों, या अधिक पैसे वाले हों, तब उन्हें प्रसन्न करने के लिए उसी रस से पूरित ग्रन्थों की भरमार कहां नहीं हुई ? तत्कालीन सत्ताओं के गीत किस राज्य में नहीं गाये गये, और गाये जाते ? ऐसा देश कौनसा है, जहां क़लम का धन्धा करने वालों में से अधिकांश ने अपने प्रभुओं तथा सत्ताधारिओं को खरी खुरी सुनायी हों ? भले आदमी ! तुम्हें अपने ऊपर दया नहीं आती तो अपनी स्त्री का तो ख्याल करो, उन अबोध बालकों पर तो रहम करो।

× × × ×

इस भाई की मेरे साथ पूरी सहानुभूति है, इसमें मैं तनिक भी सन्देह नहीं करता। परन्तु कई बार विचार करने पर भी मुझे इसका लेखन-कार्य सम्बन्धी आदर्श नहीं भाता। मेरे लिये तो चिन्तनीय प्रश्न यह है कि जब केवल चार-चार पांच-पांच करोड़ आदमियों की भाषा को राष्ट्र-भाषा मानने वाले देश विश्व-साहित्य की इतनी पूर्ति कर रहे हैं, तो क्या हमारे देश से कुछ ऊंची आशा न रखी जाय ? हमारे लेखक कितनी पुस्तकें ऐसी तैयार करते हैं जिन्हें अन्य देश वाले अपनी अपनी भाषा में अनुवादित करने की आवश्यकता समझते हों। हमारे आधुनिक ग्रन्थों में ऐसे कितने हैं जो विदेशी विद्वानों को हमारी राष्ट्र भाषा

सीखने के लिये आकर्षित या बाध्य करें । और, यदि इसे दूर की बात कहा जाय, तो हम तनिक यह तो सोचें कि हमारी रचनाओं से हमारे राष्ट्र की आवश्यकतायें कहां तक पूरी होती हैं। संसार में नये नये विज्ञान और आविष्कारों का प्रचार होरहा है, और, हम बिलकुल पीछे पड़े हैं। तिस पर भी हमारे यहां नब्बे फी सैकड़ा पुस्तकें इस प्रकार की निकलती है जिनसे हमारा विशेष हित नहीं होता, उनमें से बहुत सी तो प्रत्यक्ष रूप से अहितकर ही होती हैं, उनके प्रकाशित होने से तो न प्रकाशित होना ही अच्छा है।

× × × ×

मैं मानता हूं कि जैसी रचनायें मैं करता हूं, और करना उचित समझता हूं उनका सर्व साधारण में अभी प्रचार बहुत कम है। परन्तु उनकी उपयोगिता तो सबको स्वीकार है। शिक्षा-प्रेमी, विद्वान, और साहित्य-महारथी सदैव उनका स्वागत करते रहे हैं। इस दशा में मुझे चाहे जितनी आर्थिक कठिनाइयां तथा अन्य विघ्न बाधाओं को सामना करना पड़ रहा हो, सांसारिक दृष्टि से मैं चाहे विफल ही क्यों न हूं, मुझे अपने कार्य से संतोष है, मैं अपने तईं सफल ही समझना चाहता हूं।

× × × ×

(तृतीय)

क्या लेखकों का, अपने यहां के समाज पर, कुछ अधिकार नहीं है ? क्या राज्य तथा धनी पुरुषों का इनके प्रति कुछ कर्तव्य नहीं है ? है, क्यों नहीं ! उन्हें सोचना चाहिये कि लेखक चेतन वस्तु है, जड़ पदार्थ नहीं। उन्हें, खाने पहिनने की चीज़ों की ज़रूरत होती है, वे केवल प्रकृति-दत्त हवा पानी पर निर्वाह नहीं कर सकते । उन्हें रहने बैठने को मकान भी चाहिये; वे पेड़ों की शाखाओं पर और गुफ़ा आदि में दिन नहीं काट सकते। उन्हें अपने अतिरिक्त अपनी ग्रहस्थी की आवश्यकताओं की भी पूर्ति करनी होती है । वे सब विरक्त होकर सन्यास धारण नहीं कर सकते । उन्हें बीमारी तथा बुढ़ापे के लिये भी समुचित व्यवस्था की आवश्यकता होती है। और, यदि वे इन विविध सांसारिक आवश्यकताओं की ही पूर्ति में लगे रहें, और दिन रात उन्हें इसी प्रकार की चिन्तायें सताती रहें, तो उनका साहित्य-कार्य विशेष नहीं हो सकता। अतः समाज अथवा राज्य को चाहिए कि इन कल्याणकारी सेवकों की आवश्यकताओं की पूर्ति का ज़िम्मा अपने ऊपर लें, और, इन्हें निश्चिन्त होकर साहित्य-चिन्तन करने दें। भारतवर्ष में प्राचीन राजा महाराजाओं ने प्रायः ऐसा किया था। स्वाधीन उन्नत देशों में अब भी

उन्हें थैली आदि की भेंट देकर नाना प्रकार से प्रोत्साहित किया जाता है।

× × × ×

क्या अपने समुदाय के कुछ कष्टों को स्वयं लेखक भी कम कर सकते हैं ? क्या वे एक दूसरे के उद्धार में कुछ सहायक नहीं हो सकते ? आज कल प्रायः उन में पारस्परिक प्रेम और सहानुभूति यथेष्ट नहीं। संगठन का तो सर्वथा अभाव है। सब को अपनी अपनी पड़ी है। इस से किसी की चिन्ता दूर नहीं होती। यदि एक एक विषय के लेखकों में पारस्परिक सहयोग हो तो साहित्यिक सामग्री मिलने की कितनी सुविधा हो जाय। समय समय पर ऐसे अवसर आते हैं, जब एक लेखक दूसरे की रचनाओं के लेखन, संशोधन या प्रचार में थोड़ी बहुत सहायता अवश्य कर सकता है; परन्तु वह इस ओर ध्यान दे, तब न ?

× × × ×

क्या लेखक उच्च साहित्य की रचना के लिये उस समय की प्रतीक्षा करतें रहे, जब उन के लिये सब प्रकार की अनुकूलता होगी ? क्या वे समय के प्रवाह के साथ साथ चलें, कभी उस से आगे न बढ़ें ! समाज और राज्य का साहित्य की ओर यथेष्ट ध्यान दिलाने के लिये, अनुकूल समय का शीघ्र आह्वान करने के लिये एक उत्तम उपाय

यह है कि कुछ कर्मवीर लेखक साहित्य-यज्ञ में अपनी आहुति दे डालें। उन की लपटों से वातावरण शुद्ध होगा । उन की ध्रुव तपस्या और त्याग से, क्रमश; जनता की रुचि में भी कुछ सुधार होगा ही। प्रत्येक देश के निवासियों के विचार कितने सुन्दर और कार्य कितने मनुष्योचित होंगे, जब उनमें त्यागी और तपस्वी लेखकों की संख्या यथेष्ठ होगी।

---

(१२)

बेकार की वेदना

"ख़ाली दिमाग, शैतान का"

(प्रथम)

हमारा निर्वाह कैसे हो ? यद्यपि मैं ने एंट्रेंस पास करके लगभग दो वर्ष कालिज की भी पढ़ायी की थी; पर इतनी शिक्षा किस गिनती में है ? व्यापार लायक जमा पूंजी तो कुछ थी ही नहीं; विधवा मां के पास कुछ ज़ेवर थे, वह मेरी फीस और किताबों आदि के लिये न्यौछावर हो चुके थे। बेचारी अपने हाड़ मांस से दिन भर, और रात को भी बड़ी देर तक मेहनत करती, तब अपना और मेरा पेट पालती थी।

दिन पर दिन उसकी शक्ति घटती गयी। वृद्धावस्था, और उस में भी रोगी शरीर ! बस, आगे मेरा पढ़ना असम्भव था। हम दोनों प्राणियों का भरण पोषण कैसे हो, यही चिन्ता हमें सताने लगी।

× × × ×

शिक्षा प्राप्ति के समय कोई दस्तकारी या हुनर सीखा नहीं था। इससे मैं कोई स्वतंत्र कार्य करने में असमर्थ था। फिर मन में यह धारणा थी कि पढ़ लिख कर तो "बाबू" ही बनना चाहिये, हाथ का काम करना तो शिक्षा को बदनाम करना है। निदान नौकरी करने के सिवाय और कोई चारा न था। मालूम हुआ कि नौकरी पाना भी कुछ सहज नहीं, वह बड़े भाग्य से मिलती है। उसके लिये बड़ी सिफारिशों की ज़रूरत होती है। जो हो, मैं ने अपने शिक्षकों और अन्य मिलने वालों से 'सार्टीफ़िकट' ले ले कर संग्रह किये। उन की कापियों सहित बहुत से स्थानों में प्रार्थना-पत्र भेजे। जहां कहीं कोई अख़बार मिलता उसका 'आवश्यकता है' (Wanted) का कालम ध्यान से पढ़ जाता, और जो जगह मेरे लिये कुछ भी योग्य मालूम पड़ती, वहीं अपनी 'दरखास्त' अच्छी से अच्छी भाषा में, सुन्दर से सुन्दर अक्षरों में लिखकर, अथवा टाइप करा कर, रवाना करता।

× × × ×

कोई मुझ से पूछता, 'भाई ! तुम क्या काम करोगे !' तो मैं दुख से विचार करता कि मेरी रुचि या पसन्द का तो प्रश्न ही कहां है। बात यह है कि मैं तो किसी भी नौकरी को स्वीकार करने को तैयार हूं। देखूं, कौनसी नौकरी मुझे पसन्द करती है। हां, मेरे हिस्से में अध्यापकी या 'क्लर्की' के सिवा और क्या आ सकती है ! परन्तु कुछ मिले तो सही। हमें एक एक दिन निर्वाह करना भारी होरहा था। आख़िर, कई जगह व्यर्थ भटक चुकने के बाद, लगभग छः महिने में जाकर एक दफ्तर में अस्थायी नौकरी ठीक-ठाक हुई। काम बहुत था। और, वेतन मामूली था। तथापि मैं ने अपना भाग्य सराहा कि अनेक प्रतियोगी उम्मेदवारों में मुझे पसन्द किया गया। मेरी माता ने मुझे इतने कष्ट उठाकर पढ़ाया लिखाया था, उसका फल—वह कितना ही कम क्यों न हो—मिलने की कुछ आशा तो हुई।

× × × ×

अब मेरी दिनचर्या एक ख़ास ढंग से रहने लगी। सवेरे उठकर नित्य कर्म से निवृत्त होता, कुछ बाज़ार आदि का ज़रूरी काम होता, उसे निपटाता। खा पीकर निश्चिन्त होता न होता, दफ्तर जाने की फ़िकर होती। मेरे मकान से, वह लगभग दो मील के फ़ासले पर था। फिर, यह भी ख्याल रहता था, कि जहां तक हो सके, निर्धारित समय से कुछ

पहले पहुंच जाऊं। सायंकाल, पांच बजे वहां छुट्टी होती, तब लौटते समय भी यह मालूम होता कि कुछ काम शेष रह गया; उसे रात में करने के वास्ते घर ले आता। मुझे हर समय अपने दफ्तर के काम की चिन्ता रहती। बहुधा भोजन या स्नान आदि करते हुए भी मैं यही सोचता कि कहीं मेरे काम में कुछ कमी न रहे, और मेरे स्थायी (Permanent) होने में वाधा उपस्थित न हो। सौभाग्य से अफ़सर अच्छे मिले थे, उधर मैं काम भी जी-तोड़ मेहनत से कर रहा था। छः महीने बाद मेरी नौकरी स्थायी होगयी।

× × × ×

माता को मेरा विवाह करने की बड़ी आतुरता थी। उस ने दो तीन लड़कियां देख रखी थीं। मैं अपनी आर्थिक अवस्था बतलाकर इस प्रश्न को इस समय तक टालता रहा था। पर अब माता ने बिल्कुल न माना। विवाह की तैयारी की गयी। किफ़ायत करते करते भी काफ़ी खर्च हुआ। हां, मेरी जमी हुई नौकरी के सहारे, हमें आवश्यक रुपया उधार मिलने में विशेष कठिनाई न हुई। मेरा विवाह होगया। अब मेरे वेतन पर निर्वाह करने वाले तीन प्राणी होगये। और, अगले साल मेरी कुछ तरक्की हुई, तो मेरा नवजात पुत्र हमारे भोजन-वस्त्र में भाग लेने वाला और आगया। उधर, प्रति मास कुछ रुपया कर्ज़ में चुकाना होता था। इस प्रकार, हम बहुत संभल

संभल कर चलते थे, फिर भी निर्वाह करना बड़ा कठिन होरहा था। कई बार ऐसा मालूम हुआ कि इस समय से तो हमारी वही दशा अच्छी थी, जब मेरी माता मेहनत मज़दूरी करती, और, अपना और मेरा पेट पालती थी। उस समय हमारे सिर पर किसी का कर्ज़ न था, और न हमें किसी की ऐसी पराधीनता में ही रहना पड़ता था, जैसी अब इस नौकरी में थी।

× × × ×

पांच वर्ष जैसे तैसे काम चलता रहा। माता जी का इस वर्ष स्वर्गवास होगया। अन्त समय उनके विचारों में बहुत सात्विकता थी। उनके मन में किसी प्रकार की कामना या इच्छा न थी। उन्हें विशेष संतोष इस बात से था कि मेरा घर बस गया था, और वे अपने नाती को — मेरे बच्चे को — खिला चुकी थीं। माताजी के वियोग के बाद मुझे भविष्य कुछ अन्धकारमय सा प्रतीत होने लगा था। अपनी चिन्ता का कारण स्वयं मुझे भी कुछ स्पष्ट न होता था, औरों को क्या बताऊं? जहां तक बन आता, मैं अपना काम मन लगाकर परिश्रम से करता जाता।

× × × ×

हमारे दफ्तर के अधिकारी बदल गये थे। मेरे सहयोगी प्रायः नये अफ़सर के बंगले पर हाज़री बजाया करते, और

बात बात में हां–हजूरी किया करते । उनकी आंखों में मेरा स्वाभिमान खटक ही रहा था । वे समय समय पर काना-फूंसी करते, देखो उसे कैसा घमंड है, इतने दिन होगये, एक बार भी साहब के बंगले पर नहीं झांका है । वह हमें पतित समझता है, हम उसे इसका खूब मज़ा न चखादें, तो वह भी क्या जानेगा। निदान, वे मेरे विरुद्ध अफ़सर के कान भरने लगे। मेरे कामों में तरह तरह के दोष दिखाये जाने लगे। इन बातों का असर हुए बिना न रहा । अफ़सर की, मेरी तरफ़, टेढ़ी निगाह रहने लगी । नया साल आरम्भ होने पर जहां मुझसे कम समय की नौकरी वालों की वेतन-वृद्धि हुई, मेरी वेतन में कमी करदी गयी । अप्रत्यक्ष रूप से मुझे चेतावनी मिल गयी कि आगे निर्वाह होना कठिन है। तथापि मुझे अपने व्यवहार में कोई ऐसी बात मालूम न हुई, जिसका सुधार किया जाना आवश्यक हो।

× × × ×

मेरी स्त्री बीमार हुई, साथ में बच्चा भी पड़ रहा । रसोई आदि करने का सब कार्य-भार मेरे ऊपर आपड़ा । फिर, उनकी बीमारी के कारण मैं बहुाध रात को काफ़ी नहीं सो पाता था। मेरी भी तबियत खराब रहने लगी। मैं ने छुट्टी की दरखास्त दी, वह डाक्टरी 'सार्टिफिकट' के अभाव में, ना-मंजूर करदी गयी। मैं जैसे तैसे दफ्तर जाता, तो कभी

कभी देर हो जाती, काम भी पहले की तरह न कर पाता। इससे अधिकारियों को नाराज़गी ज़ाहिर करने का प्रत्यक्ष निमित्त मिल गया। इस बीच में दूसरी जगह एक आदमी भेजे जाने की ज़रूरत हुई, तो मुझे ही वहां जाने का हुक्म हुआ, मैं इसके पालन में असमर्थ था। बस, मेरी परिस्थिति का विचार न कर, मुझे बर्खास्त कर दिया गया।

× × × ×

नौकरी छूटने पर, संसार यात्रा में, पुनः कठोर परिस्थिति का सामना करना पड़ा। जीवन-संग्राम में खड़ा रहने के लिये हर रोज़ दो वक्त भोजन की आवश्यकता होती है। मोटा झोटा, कैसा भी हो, पहनने को वस्त्र चाहिये। गृहस्थ के और भी छोटे मोटे अनेक ख़र्च हैं। कैसे काम चलाया जाय? पैसे बिना व्यापार धन्धा हो नहीं सकता। और, नौकरी में जैसी कुछ पराधीनता का अनुभव किया था, वह काफ़ी कटु था। अब क्या किया जाय! केवल अपना ही प्रश्न हो तो कुछ बात नहीं। मेरे साथ में तो स्त्री है, और बच्चा भी है। स्त्री तो स्वयं समझदार है, पर जब यह बालक अपनी तोतली बोली से क्षुधा निवारण की सामग्री की याचना करता है, तो इसे क्या कहकर समझाऊं। और, मेरा समझाना इसके कै घड़ी काम आयगा? इसका रुदन, इसकी व्यथा, इसके कष्ट नहीं देखे जाते। क्या करूं? मुझे अपना जीवन भार-रूप हो रहा

है। किसी तरह मेरा प्राणान्त हो जाय, तो इस यातना से छुटकारा पाजाऊं। आज स्कूल और कालिज की वह शिक्षा मेरे क्या काम आती है, जिसने मेरा इतना बहुमूल्य समय, शक्ति और धन नष्ट किया।

× × × ×

(द्वितीय)

आह ! हमारे देश में तथा अन्य देशों में कितने शिक्षित और पढ़े लिखे बेकार यहां से वहां मारे मारे फिरते हैं ! बहुत से देशों में तो यह हिसाब ही नहीं रहता कि इनकी संख्या कितनी है। जब कोई बेकार आत्म हत्या कर डालता है, या अपनी जान पर खेल कर कोई अन्य घोर कर्म कर लेता है तो कुछ समय के लिये जनता का ध्यान इनकी ओर आकर्षित होता है। कुछ आदमी सरकार को दोष देते हैं और कुछ इसे भाग्य की बात कह कर रह जाते हैं। थोड़े दिन पीछे वह घटना हुई न हुई बराबर हो जाती है। परन्तु, कोई गम्भीर विचार करे या न करे, समाज का रोग स्वयं कम होने वाला नहीं।

× × × ×

प्रश्न, केवल शिक्षितों की ही बेकारी का नहीं है। अशिक्षितों की, मज़दूरों की, बेकारी भी काफ़ी भयानक है,

विशेषतया उन देशों में, जो आधुनिक सभ्यता और विज्ञान का अधिक दम भरते हैं। सरकारें परेशान हैं। कमीशनों और जांच कमेटियों की भरमार है। बड़ी बड़ी रक़में ख़र्च करके नये नये दरिद्रालय (Poor Houses) खोले जाते हैं, जिन में बेकारों के लिये तरह तरह के कामों की योजना होती है, बेकार अपनी शक्ति और योग्यता के अनुसार परिश्रम करके अपने निर्वाह-योग्य मज़दूरी पाते हैं। निदान, बेकारी के भीषण रोग का इलाज करने के वास्ते नित्य नये उपायों के प्रयोग किये जाते हैं। पर 'मर्ज़ बढ़ता गया, ज्यों ज्यों दवा की'।

× × × ×

ख़ाली दिमाग़ में शैतान को काम करने का अवसर खूब मिलता है। उपदेशक और लेखक लाख मना किया करें, कानून और दंड-विधान चाहे जितने कठोर हों, भूखे और बेकारों को विविध अपराधों के करने से नहीं रोका जा सकता। वे दूसरों को धोखा देंगे, जाल साज़ी करेंगे, छल कपट और लूट मार करेंगे, डाके डालेंगे, क्रान्तियों का आयोजन करेंगे। गुंडापन बढ़ेगा, लड़कियां और औरतें बहकायी और भगायी जांयगी, वेश्यावृत्ति और व्यभिचार को उत्तेजना मिलेगी। इस पर कानून के अनुसार यही न होगा कि अपराधियों को खोजकर उन्हें जेल में ठूंसा जायगा, काले पानी भेजा

जायगा, या कुछ को कभी कभी फांसी के तख्ते पर लटका दिया जायगा। पर, जो लोग जठराग्नि की ज्वाला सहते हैं, जो अपने बाल बच्चों को भूखों मरते देखते हैं, वे ऐसे दंड से कब घबराते हैं! परमात्मा ऐसे दुस्साहसियों से प्रत्येक देश की रक्षा करे।

× × × ×

(तृतीय)

बेकारी दूर करने का उपाय क्या है? शिक्षितों की बेकारी हटाने के लिये शिक्षा प्रणाली में सुधार करना आवश्यक है। शिक्षित व्यक्ति केवल दफ्तरों में क़लम घिसने लायक न होने चाहिये, उनमें 'बाबू' बनने की बेहद हविस न होनी चाहिये। सब पढ़े लिखों को नौकरी नहीं मिल सकती। प्रत्येक राज्य में नौकरियों की संख्या परिमित रहती है। फिर, केवल नौकरों ही नौकरों से किसी राज्य का क्या भला हो सकता है! किसान, कारीगर, दुकानदार, व्यापारी, डाक्टर ऐंजिनियर आदि का जनता में यथेष्ठ अनुपात रहना चाहिये। इन सभी उपयोगी कार्यों की शिक्षा की समुचित व्यवस्था होनी आवश्यक है। शिक्षा संस्थाओं से निकलने वालों की दृष्टि में प्रत्येक प्रकार का उपयोगी श्रम सम्मान और आदर के योग्य होना चाहिये।

× × × ×

क्या उच्च साहित्य और दर्शन आदि की शिक्षा देने वाली संस्थायें न रहें ? रहें, क्यों नहीं ? पर, परिमित सीमा में। देश में दार्शनिक, तार्किक, गणितज्ञ और ज्योतिषी आदि निस्संदेह आभूषण हैं, पर आभूषण तभी अच्छे लगते हैं जब खाने पहनने का अभाव न हो। वह शिक्षा किस काम की, जो आदमियों को अपनी जिव्हा या लेखनी से संसार-हितैषिता और विश्व-बन्धुत्व आदि की ऊंची उड़ान लगाना सिखाती हो, पर उन्हें अपना पेट भरने और तन ढकने के लिये विविध दुष्कृत्य करने को भी वाध्य करती हो। जो आदमी अपना, और अपने परिवार का पालन पोषण नहीं कर सकते, वह समाज-सेवा, और देश-भक्ति क्या ख़ाक करेंगे ? उनकी आदर्श–वादिता शेख़चिल्ली का स्वप्न है। शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जिससे शरीर, मन आत्मा सब की समुचित पुष्टि हो, जिससे हमारी सांसारिक यात्रा में भी पर्याप्त सुविधा मिले। ऐसी शिक्षा पाये हुए आदमी प्रायः बेकार न रहेंगे।

× × × ×

अशिक्षितों की बेकारी के दूर करने के सम्बन्ध में कुछ और विचार होना आवश्यक है। रोज़मर्रा के अनुभव की बात है। गांव या क़स्बे में एक आटा पीसने की कल (Flour-Mill) लग जाती है, अनेक अमीर ग़रीब उसी का पिसा आटा खाने लग जाते हैं, चाहे वह स्वास्थ के लिये कम

लाभदायक ही क्यों न हो। इस एक कल के लगने से पांच सात आदमियों को काम मिलता है तो सैकड़ों अनाथ विधवाओं तथा अन्य निर्धन स्त्रियों की रोटी मारी जाती है। शहर में तीन चार कपास ओटने के कारख़ाने (Ginning Factories) अथवा एक सूत कातने और कपड़ा बुनने की मिल (Spinning & Weaving Mill) खुल जाती हैं, तो उन से यदि दो चार सौ आदमियों को नौकरी मिलती है, तो उन कई हज़ार आदमियों का रोज़गार मारा भी जाता है जो स्वतन्त्रता-पूर्वक घर बैठे काम करते थे, और स्वावलम्बन का जीवन बिताते थे।

× × × ×

बहुधा पैसे वाले एक दूसरे की स्पर्द्धा में नयी नयी मिलें और कारख़ाने खोलते रहते हैं, और हर एक नयी मिल या कारख़ाने के खुलने का अर्थ बहुत से आदमीयों की रोटी छिन जाना है। इस बात को भूल कर प्राय: आदमी ऐसी रिपोर्टों पर खुश ही हुआ करते हैं कि इस वर्ष देश में इतने लाख रुपये की मशीनरी और ऐंजिन बने अथवा बाहर से आये, तथा आगामी वर्ष में इतने नये कल कारख़ानों की स्थापना होने वाली है।

× × × ×

प्राय: आधुनिक औद्योगिक देश जितना माल तैयार

करते हैं, उस का बहुत थोड़ा अंश ही वहां खपता है। वे अधिकतर माल विदेशों की मांग के भरोसे बनाते हैं; और जब विविध कारणों से वह मांग घट जाती है तो उन का माल गोदामों में जमा होने, और, क्रमशः ख़राब होने लगता है। मज़दूरों के काम करने के घंटे कम किये जाते हैं। इस से उद्देश्य सिद्ध न होने पर, अन्ततः कुछ कारख़ाने बिल्कुल बन्द कर दिये जाते हैं, जिस के परिणाम स्वरूप सहस्रों या लाखों मज़दूर बेकार होजाते हैं। मज़दूरों को काम पर लगे रहने के समय जो आय होती है, वह प्रायः उनके खाने पीने में, या कुछ दशाओं में उनके दुर्व्यसनों या कुरीतियों में, ख़र्च होजाती है। उन्हें कुछ बचत नहीं होती। इसलिये काम छूटते ही वे रोटी पानी को तरसने वाले, असहाय और दीन दुखी हो जाते हैं।

× × × ×

बड़ी बड़ी मशीनों और कारख़ानों के रहते, गृह-शिल्प का नाश और बेकारी का बढ़ना स्वाभाविक है। इस ओर कौन ध्यान देता है ! अफ़सोस और दुख का विषय तो यह है कि पूंजीपतियों से ख़रीदे हुए अथवा स्वयं अपने तौर से काम करने वाले अनेक बड़े बड़े दिमाग़ यह सोचने में लगे हुए हैं कि कोई काम कम समय में, और कम आदमियों द्वारा कैसे हो सकता है। अनेक आविष्कार इस

बात को लक्ष्य में रख कर किये जा रहे हैं कि एक मशीन के कौन कौन से कल पुर्ज़े किस तरह बदल दिये जांय कि उस के द्वारा सौ आदमियों से होने वाला काम केवल बीस तीस आदमियों से ही हो जाया करे। इस समय भी बेकारों की संख्या काफ़ी चिन्तनीय है। फिर इन नये नये आविष्कारों का परिणाम कितना और अधिक भयंकर होगा ! जिस विज्ञान का उद्देश्य मानव जनता की सुखसमृद्धि को बढ़ाना होना चाहिये, उसी के कारण भविष्य कितना अन्धकारमय प्रतीत होता है ! बेकारों के लिये दरिद्रालय (Poor Houses) खोलने या अन्य उपाय करने से समस्या पूर्णतः हल नहीं हो सकती। मूल रोग का विनाश करने के लिये, धनोत्पादन और धन वितरण की पद्धति पर गम्भीर चिन्तन किये जाने की आवश्यकता है। शुभम् !

---

(१३)

उपसंहार

"दर्द का हद्द से गुज़रना है, दवा होजाना।"

क्या मनुष्य इसी प्रकार दुख पाते रहेंगे ?

चहुं ओर की, संसार के विविध देशों तथा भिन्न भिन्न श्रेणियों के मनुष्यों की, वेदना-भरी बातें सुन कर, और, समय समय पर कष्ट पाने वालों को देख कर बहुतों के मन में यह प्रश्न उपस्थित होगा कि क्या मनुष्यों की वेदना इसी प्रकार बनी रहेगी ? हम तो ऐसे निराशावादी नहीं हैं। हम नवयुग के शुभागमन की प्रतीक्षा में है। हमें आशा और विश्वास है कि वह अवश्य आयेगा, वह आरहा है। प्रत्येक प्रकार के कष्टों का सर्वथा अन्त होगा नहीं तो, उनमें बहुत कुछ कमी निश्चय ही होगी।

× × × ×

वेदनाओं को कम करने का उपाय क्या है ?

परन्तु कोई महान् कार्य केवल इच्छा या आशा मात्र से नहीं हो सकता। दैवी शक्तियां आकर स्वयं हमारे भार को नहीं उठा लेंगी। हमें अपना कर्तव्य पालन करना होगा। जितना हमारा त्याग और तपस्या अधिक होगी उतना ही हमारा अभीष्ट नवयुग जल्दी आयेगा। प्रत्येक व्यक्ति को चाहिये कि वह अपनी ही वेदना के चिन्तन में ग्रस्त न रह कर, उस वेदना के व्यापक रूप का भी विचार करे, अपने वर्ग वालों के कष्टों का अनुभव करे; साथ ही, दूसरे वर्ग वालों से भी समुचित सहानुभूति रखे, और यथा-शक्ति उन के कष्ट-निवारण में सहयोग करे। ऐसा होने से ही मनुष्यों की बहुत सी वेदनाएं कम होने का मार्ग प्रशस्त होगा।

× × × ×

पीड़कों को सावधान होना चाहिये।

पीड़कों को भली भांति समझ लेना चाहिये कि प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया होती है। प्रत्येक कर्म का शुभाशुभ परिणाम होता है। पीड़ा देने वाले अपने कार्यों से ऐसे वृक्ष का बीज बोते हैं जिसके अनिष्टकारी फल कालान्तर में स्वयं उन के ही गले उतारे जायेंगे। अतः उन्हें अपना रंग ढंग सुधार कर पीड़ितों की सुधि लेनी चाहिये। वे यह न समझें कि उन्हें यह कार्य परोपकार के भाव से करना है;

नहीं, स्वयं अपने स्वार्थ के लिये उनका यह कर्तव्य है। दूसरों को दुख देकर कोई सुखी नहीं हो सकता। यदि हम छल, बल, कपट या बेईमानी आदि से किसी के दो पैसे ऐंठ लेते हैं, या अपने अभिमान और अहंकार के कारण दूसरों से घृणा करते हैं. तो इससे हमारा नैतिक और आत्मिक पतन होता है। अपने पास पड़ौस या नगर वालों के, नरक कुंड में रहते हुए, हम स्वर्ग का आनन्द नहीं पा सकते। उनके कीटाणुओं से हमें कष्ट पाना ही होगा। हमारा दुख सुख जनता के दुख सुख से सम्बद्ध है। हम जीवन और शक्ति चाहते हैं तो हमें दूसरों को ये चीज़ें प्रदान करते रहना चाहिये। दूसरों की सेवा और सहानुभूति में जो आत्म-संतोष और आनन्द है, उसे वे ही जान सकते हैं, जिन्होंने इसका अनुभव किया है। जो भाई समय रहते इन बातों पर स्वयं विचार नहीं करते, उन्हें समय का सन्देश वाध्य होकर सुनना पड़ता है।

× × × ×

पीड़ित ध्यान दें !

पीड़कों को जितना सावधान होने की आवश्यकता है, उससे अधिक पीड़ितों को ध्यान देने की ज़रुरत है। वास्तव में पीड़क जितने दोष-भागी हैं, पीड़ित उस से कम

नहीं, कुछ अधिक ही कहे जा सकते हैं। ये ही तो पीड़कों को इन्हें सताने का अवसर देते हैं। ये ही तो निर्बल, कायर, अपनी शक्ति से अपरिचित, और संगठन-हीन होने के कारण दूसरों को अत्याचारी, दुष्ट और हिंसक बनाते हैं। यदि दूसरे इन्हें मानसिक, धार्मिक या राजनैतिक पराधीनता में रख रहे हैं तो इस का दोष भी इन्हीं पर है। इन्हों ने उन की अधीनता क्यों स्वीकार की, तथा ये उसे क्यों सहन कर रहे हैं? अस्तु, पीड़कों की सृष्टि करने वाले पीड़ित ही हैं। इस प्रकार इन का दोहरा पाप है; ये अपने प्रति पापी हैं, साथ ही दूसरों (पीड़कों) के पीड़क बनने में सहायता देकर उनके प्रति भी पाप करने वाले हैं। बहुधा ऐसा भी होता है कि ये पीड़कों के हाथ की कठपुतली बन कर, संसार में अन्य भोले भाले आदमियों को सताने लग जाते हैं। निदान पीड़ितों के पाप का तो कहीं अन्त ही मालूम नहीं होता।

पीड़ितों का, अपनी वेदना के लिये, दूसरों को दोषी ठहराना न्यायोचित नहीं, वे इस के लिये बहुत कुछ स्वयं ही उत्तरदायी हैं। जैसा कि पिछले पृष्ठों में बताया गया है, अधिकांश पीड़ित इस बात को जानते हैं कि अपनी, तथा अपनी श्रेणी की, कितनी वेदना वह स्वयं कम कर सकते हैं।

जब वह अपना कर्तव्य पालन नहीं करते, अपने हिस्से का काम नहीं निपटाते तो उन्हें दूसरों के विषय में क्यों शिकायत करनी चाहिये ?

× × × ×

भाग्य की बात ।

क्या इस विश्व में मानव जीवन का प्रोग्राम तरह तरह के कष्ट उठाना ही है ? क्या मनुष्य के भाग्य में दुख ही दुख सहना लिखा है ? भारतवर्ष आदि पूर्वीय देशों के अनेक आदमी अपने अथवा दूसरों के दुखों को भाग्य अर्थात पूर्व-जन्म के कर्मों का फल कह देते हैं। उधर, पाश्चात्य देशों में भी जबसे सब प्रकार की उन्नति का मुख्य आधार धनवान होना समझा जाने लगा, तब से दीन हीन आदमी धन-कुबेरों और लक्ष्मी-पतियों की तुलना में अपने आपको अत्यन्त क्षुद्र मानने लगे हैं। इनमें से बहुतों को अपनी हीन अवस्था से छुटकारा पाने की कोई आशा नहीं होती। इनका जीवन चिन्ता और शोक की भट्टी में जलता रहता है; मृत्यु का स्वागत करते हुए, ये प्रायः परमात्मा को ही सब प्रकार के दुख देने वाला ठहराते हैं।

हम ऐसे भाग्यवाद को मानने को तैयार नहीं जो मनुष्यों को अपने कष्टों के प्रति नितान्त उदासीन बना दे, और उन कष्टों को दूर करने के लिये उत्साहित न करे। परमात्मा दुख देने वाला है, ऐसी बात का भी विश्वास

करने को हमारा जी कदापि नहीं चाहता। यह बात तर्क-संगत भी नहीं है। हम चाहे जिस धर्म, या जाति अथवा रंग (वर्ण) के हों, परमात्मा को कृपालु और दयालु मानते हैं। उसे परम पिता कहते हैं। माता पिता सन्तान को प्यार करते, और उन के सुख की व्यवस्था करते हैं, फिर महा दयालु, परमपिता परमात्मा अपने पुत्रों को कष्ट क्यों देगा! वह मनुष्यों की सृष्टि केवल उन्हें दुख देने के लिये क्यों करेगा! निदान मनुष्य केवल दुख पाने के लिये नहीं है।

× × × ×

आदमी दुख क्यों पाते हैं ?

कोई आदमी दुख पाना नहीं चाहता। सब सुख की खोज में हैं। परन्तु, साधारणतया मनुष्यों में स्वार्थ और अज्ञान होता है, कुछ बातें हम अपने अज्ञान-वश ऐसी कर देते हैं जिन से हम स्वयं कष्ट पाते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ बातें दूसरे आदमी अपने अज्ञान या स्वार्थ-वश ऐसी कर सकते हैं, जिनसे हमें कष्ट पहुंचे। यदि मनुष्यों में समुचित ज्ञान हो और उन में अनुचित स्वार्थ-सिद्धि का भाव न हो तो उनके अधिकांश कष्टों का सहज ही अन्त होजाय।

× × × ×

समाज और राज्य का उत्तरदायित्व ।

मनुष्य सुख की प्राप्ति के लिये समाज में संगठित होकर रहते हैं और राज्य का निर्माण करते हैं। समाज और राज्य से मनुष्य यह आशा करते हैं कि ये मनुष्यों की उन्नति, सुख समृद्धि और विकास में सहायक होंगे, तथा इस में आने वाली विविध बाधाओं का निवारण करेंगे। समाज और राज्य का कर्तव्य है कि वे मनुष्यों की इस स्वाभाविक आशा और इच्छा की पूर्ति करें। वे लोगों के उस स्वार्थ-भाव का नियंत्रण करें, जिसके वशीभूत होकर वे एक दूसरे को हानि पहुंचाते हैं। वे उस अज्ञान को दूर करने में भी कटिवद्ध रहें, जिसके कारण मनुष्य स्वयं अपने आपको, अथवा दूसरों को कष्ट पहुंचाता है। वास्तव में समाज और राज्य मनुष्यों के स्वार्थ और अज्ञान रूपी स्वाभाविक बीमारियों के लिये औषधि स्वरूप है।

× × × ×

विचारणीय विषय ।

परन्तु अनेक वार हम देखते हैं कि औषधि रोग का निवारण न करके उसे बढ़ाने वाली भी हो सकती है। जब वह अनुचित मात्रा में ले ली जाती है, या विधि-पूर्वक सेवन नहीं की जाती तो वह हितकर न होकर अनिष्टकारी हो

जाती है। इसलिये बहुत आवश्यक है कि इस बात की समय समय पर जांच होती रहे कि समाज तथा राज्य के स्वरूप, संगठन आदि में कोई ऐसा दुर्गुण तो नहीं आ घुसा, जिससे ये अपने उद्देश्य की पूर्ति करने में असमर्थ हो जांय। वर्तमान परिस्थिति में, विविध देशों में, असंख्य आदमी नाना प्रकार से पीड़ित हैं। इससे सहज ही यह अनुमान होता है कि वहां समाज और राज्य अपने कर्तव्य का यथेष्ट रूप से पालन नहीं कर रहे हैं, उनमें सुधार होने की आवश्यकता है। इन बातों पर हम पहले प्रसंगानुसार प्रकाश डाल चुके हैं।

× × × ×

आशा है, कि यह 'विश्व वेदना' पीड़क और पीड़ित सबको कल्याणकारी संदेश देकर, विश्व की मानव जनता को इन दोनों प्रकार के अपराधियों और पापियों से मुक्त करने, और संसार-व्यापी वेदना को कम करने में यत्किंचित सहायक होगी। शुभम् !

राष्ट्रीय विद्यालयों, तथा सरकारी स्कूलों में प्रचलित पाठ्य पुस्तकों, पारितोषिक और पुस्तकालयों के लिये विशेष उपयोगी

भारतीय ग्रन्थ माला,

वृन्दावन ।

"प्रत्येक देश–प्रेमी को इस माला की पुस्तकें अपनाकर, इसके व्यवस्थापक को साहित्य की वृद्धि के लिये उत्साहित करना चाहिये"।

—सैनिक।

It is the duty of every Hindi–knowing citizen to help the author, in the pioneer work that he is doing.

—The Education.

१–भारतीय शासन Indian Administration—"राजनैतिक ज्ञान के लिये आइने का काम देने वाली", और "विद्यार्थियों, पत्र–सम्पादकों और पाठकों" के बड़े काम की"। छटा संस्करण; मूल्य ।।।=)

२–भारतीय विद्यार्थी विनोद—भाषा, विज्ञान, इतिहास आदि पाठ्य विषयों की आलोचना, और मातृ भाषा आदि आठ विचारणीय विषयों की विवेचना। "नये ढंग की रचना।" दूसरा संस्करण; मूल्य ।=)

३–भारतीय राष्ट्र निर्माण Indian Nation Building—राष्ट्रीय समस्याओं का "बहुत ही योग्यता और स्वतंत्रता से विचार किया गया है।" दूसरा संस्करण। मूल्य ।।।=)

४–भावना–कल्याण–पथ की प्रदर्शिका। गद्य काव्य।

स्फूर्ति का संचार करने वाली। नवयुवकों के लिये विशेष उपयोगी ओजस्वी रचना; मूल्य ।।।=)

५-सरल भारतीय शासन-साधारण योग्यता वालों के लिये राजनीति की अत्यन्त आवश्यक पुस्तक। मूल्य ।।)

६-भारतीय जागृति Indian Awakening—गत सौ वर्षों का धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और साहित्यिक आदि इतिहास। मूल्य ।।।=)

विश्व वेदना-मानव समाज के भिन्न भिन्न पीड़ित अंग--मजदूर, किसान, लेखक, बच्चे, विधवायें, वेश्याएं क़ैदी और अनाथ आदि अपनी अपनी वेदना बता रहे हैं। उनकी व्यथा सुनिये। कष्ट पीड़ितों की वेदना के निवारण के विषय में भी विचार किया गया है। मूल्य ।।)

८-भारतीय चिन्तन—राजनैतिक, अन्तराष्ट्रीय, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक आदि विषयों का मनोहर वर्णन। मूल्य ।।।=)

९-भारतीय राजस्व Indian Finance--दो सौ करोड़ रुपये के वार्षिक सरकारी आय-व्यय का ज्ञान प्राप्त कर आर्थिक स्वराज्य प्राप्त कीजिये। मूल्य ।।।=)

१०-निर्वाचन नियम Election Guide-व्यवस्थापक संस्थाओं, म्यूनिसिपैलिटियों और ज़िला बोर्डों के निर्वाचकों और उम्मेदवारों के लिये अत्युपयोगी। मूल्य ।।-)

११-बालब्रह्मचारिणी कुन्ती देवी—एक आधुनिक आदर्श महिला का मनन करने योग्य, सचित्र जीवन चरित्र।

स्त्री शिक्षा की अनूठी पुस्तक। साधारण, सजिल्द और राज संस्करण; मूल्य क्रमशः १॥), १॥), ३)

१२–राजनीति शब्दावली Political Terms—राजनीति के हिन्दी-अंगरेज़ी तथा अंग्रेज़ी—हिन्दी पर्यायवाची शब्दों का उत्तम संग्रह। मूल्य ।–)

१३–नागरिक शिक्षा Elementary Civics—सरल भाषा में, सरकार के कार्यों—सेना पुलिस, न्याय, जेल, कृषि, उद्योग-धंधे, शिक्षा स्वास्थ्य आदि विषयों का विचार। सचित्र। मूल्य ॥)

१४–ब्रिटिश साम्राज्य शासन Constitution of the Br. Empire— इंगलैंड की तथा उसके साम्राज्य के स्वतंत्र तथा परतंत्र उपनिवेशों, एवं अन्य भागों की शासन पद्धति का सरल सुबोध वर्णन। मूल्य केवल ।॥=)

१५–श्रद्धाञ्जलि—"यह श्रद्धा के पथ में पूर्व और पश्चिम, नवीन और प्राचीन, स्त्री और पुरुष, धर्मी और विधर्मी सब की अर्चना कर रही है। वीर पूजा में प्रेरणा, उत्साह और प्राण की मांग की गयी है।" इसमें २९ महापुरुषों के दर्शन हैं। मूल्य केवल ।॥=)

१६–भारतीय नागरिक—इसमें भारतीय नागरिकों के अधिकार और कर्तव्यों के अतिरिक्त, किसानों, ज़मींदारों लेखकों, सम्पादकों, विद्यार्थियों और अध्यापकों महिलाओं और दलित जातियों आदि को देशोन्नति के लिए दी जाने वाली सुविधायें बतलायी गयी हैं। मूल्य ॥)

अन्य पुस्तकें ।

संसार के सम्वत	।।-)	हिन्दी भाषा में अर्थ शास्त्र	-)
भारतीय अर्थ शास्त्र प्रथम भाग	१।।)	हमारा प्राचीन गौरव	-)
,, द्वितीय भाग	१)	हिन्दी भाषा में राजनीति	-)
		भारतीय प्रार्थी	।।)

हमारी पुस्तकों की स्वीकृति

पाठ्य पुस्तकें ।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन	(१) भारतीय शासन, (२) सरल भारतीय शासन, (३) भारतीय राजस्व, (४) निर्वाचन नियम, (५) नागरिक शिक्षा, (६) ब्रिटिश साम्राज्य शासन ।
इन्दौर	भारतीय शासन
काशी विद्यापीठ	,,
गुरुकुल कांगड़ी	,,
गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ	,,
प्रेम महाविद्यालय वृन्दावन	(१) भारतीय शासन, (२) भारतीय विद्यार्थी विनोद, (३) नागरिक शिक्षा ।

इसके अतिरिक्त माला की भिन्न भिन्न पुस्तकें संयुक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त, गवालियर, बड़ौदा, आदि में पारितोषिक और पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत हैं ।

देश प्रेमी पाठकों को ये पुस्तकें मंगाकर पढ़नी चाहियें । प्रत्येक नगर और गांव में इनका प्रचार करने की आवश्यकता है ।

———